पोषण-संस्थान और खाद्य का समीकरण

लेखक

डा० मुरलीधरलाल श्रीवास्तव, डी० एस-सी०

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

इलाहाबाद

१९४१

UNIVERSAL LIBRARY
OU_186475
UNIVERSAL LIBRARY

पोषण-संस्थान और खाद्य का समीकरण

लेखक

डा० मुरलीधरलाल श्रीवास्तव, डी० एस-सी०

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

इलाहाबाद

NOTE

This book has been written in partial fulfilment of the conditions laid down in the bond which the author executed prior to holding the Empress Victoria Readership of the University of Allahabad.

ALLAHABAD:
March 28, 1941

M. D. L. SRIVASTAVA

Checked 1969

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१—पोषण-संस्थान	... ...	१
२—आहार का रसायन	... ...	१
३—कर्बोदित	... ...	२
४—प्रत्यामिन	... ...	३
५—मज्जा	... ...	४
६—खाद्य पदार्थ का पाचन और समीकरण		... ४
७—खाद्य पदार्थ का मुख में पाचन	...	... ५
८—पेट में पाचन	... ...	... ७
९—आंत्रिक पाचन	... ...	... ८
१०—बृहत्-अंत्र में पाचन	.. ...	... १२
११—लाला-क्षरण-विधि	... ...	... १३
१२—क्लोम-रस का क्षरण	..	.. १५
१३—पित्त-क्षरण	... ...	... १६
१४—खाद्य का शोषण	... ...	... १८
१५—कर्बोदित का शोषण	... ...	... २०
१६—प्रत्यामिन का शोषण	... ...	... २१
१७—मज्जा का शोषण	... ...	... २२
१८—खाद्य का रासायनिक परिवर्तन, कर्बोदित		... २२
१९—प्रत्यामिन	... ...	... ३४
२०—मज्जा	... ...	... ४४
२१—विटामिन	... ...	... ५०
२२—विटामिन 'अ'	... ...	... ५१

विषय			पृष्ठ
२३—विटामिन 'ब'	...	...	५१
२४—विटामिन 'स'		...	५२
२५—विटामिन 'ड'	...	...	५२
२६—विटामिन 'इ'	...	...	५४
२७—विटामिन 'ब$_२$'	...	...	५५
२८—पोषण में कुछ खनिज पदार्थों का महत्त्व			६०

पोषण-संस्थान

पोषण-संस्थान अन्नमार्ग और कुछ ग्रंथियों से मिलकर बना है।

अन्नमार्ग की लम्बाई मनुष्य में लगभग तीस फ़ुट के होती है। इसका विस्तार मुख से मलद्वार तक होता है। मुख में बत्तीस दाँत होते हैं, जिनसे अन्न चबा-चबाकर छोटे-छोटे कणों में विभाजित किया जाता है। इसके नीचे दो गिलनयन्त्र होते हैं। मुख-कंठ और अन्नप्रणाली।

अन्नप्रणाली आमाशय या पाकस्थली में खुलती है। आमाशय के बाद छोटी अन्त्र और फिर बड़ी अन्त्र का आरम्भ होता है। छोटी अन्त्र ३ भागों में विभाजित है—(१) डूओडेनम, (२) जेजुनम, (३) ईलियम। बड़ी अन्त्र इसी प्रकार चार भागों में विभाजित है—(१) सीकम, (२) बृहदन्त्र, (३) मलाशय और (४) गुदा।

अन्नमार्ग में तीन ग्रंथियों की प्रणालियाँ खुलती हैं। ये हैं—(१) लालाग्रंथि, (२) यकृत और (३) क्लोम। लालाग्रंथि तीन हैं—(१) कर्णाग्रवर्ती, (२) जिह्वाधोवर्ती और (३) हन्वधोवर्ती लालाग्रंथि।

अब खाद्य के समीकरण पर विचार करने के पहले कुछ बातें आहार के रसायन की जान लेनी आवश्यक हैं।

आहार का रसायन

खाद्य पदार्थ तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित किये जाते हैं—(१) कर्बोदित—ये यौगिक कर्बन, उदजन और ओषजन के जोड़ से बनते हैं।

(२) प्रत्यामिन—ये यौगिक कर्बन, उदजन, ओषजन, नोषजन, गन्धक और कभी-कभी स्फुर के जोड़ से बनते हैं।

(३) मज्जा—य यौगिक भी कर्बन, उदजन और ओषजन के जोड़ से बनते हैं।

कर्बोदेत

ये यौगिक बहुधा वनस्पतियों और जानवरों के शरीर में मिलते हैं। भोजन की सामग्री का एक बड़ा भाग कम से कम भारतवर्ष में कर्बोदेत का होता है। कर्बोदेत तीन तत्त्वों के मिलने से बनते हैं—कर्बन, ओषजन और उदजन। इसमें उदजन के परमाणुओं की संख्या ओषजन के परमाणुओं की संख्या के दुगुनी होती है। यह यौगिक २,३,४,५,६,७,८,९ कर्बन परमाणुवाले होते हैं और इनके नाम द्विओज, त्रिओज, चतुरोज, पंचोज इत्यादि हैं। इनमें सबसे अधिक प्रयोजनीय वे यौगिक हैं जिनमें ६ कर्बन परमाणु होते हैं। य तीन श्रेणियों में विभाजित हैं—

१—एक-शर्करिद ($क_६ उ_{१२} ओ_६$)। उदाहरण—फलोज, द्राक्षोज इत्यादि।

२—द्वि-शर्करिद ($क_{१२} उ_{२२} ओ_{११}$)। उदाहरण—यवोज और इक्षु-शर्करा।

३—बहु-शर्करिद ($क_६ उ_{१०} ओ_५)_न$। उदाहरण—नशास्ता, दक्षिणिन इत्यादि।

प्रत्यामिन

प्रत्यामिन ओषजन, उदजन, नोषजन, कर्बन और गन्धक से मिलकर बनते हैं। इन तत्त्वों की मात्रा प्रत्यामिन के यौगिकों में निम्नलिखित होती है—

ओषजन	२१·५—२३·५	प्रतिसैकड़ा।
उदजन	६·५— ७·३	प्रतिसैकड़ा।
नोषजन	१५·०—१७·६	प्रतिसैकड़ा।
कर्बन	५०·६—५४·५	प्रतिसैकड़ा।
गन्धक	·३— २·२	प्रतिसैकड़ा।

इनके अतिरिक्त बहुत-से प्रत्यामिनों में स्फुर भी थोड़ी-सी मात्रा में पाया जाता है (०·४—०·८ प्रतिसैकड़ा))।

यदि प्रत्यामिन का उद-विश्लेषण किया जाय तो प्रत्यामिन के अणु टूटकर कई प्रकार के अमिनो-अम्ल बन जाते हैं। इसके लिए प्रत्यामिन को किसी बलिष्ठ अम्ल (उदहरिकाम्ल वा गन्धकाम्ल) के साथ गरम करते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि प्रत्यामिन कई अमिनो-अम्ल से मिलकर बनते हैं। अमिनो-अम्ल किसी कार्बनिक अम्ल के उदजन के एक परमाणु को हटाकर उसकी जगह नोउ$_2$ के लगाने से बनता है। जैसे सिरकाम्ल से अमिनो-सिरकाम्ल बना सकते हैं।

$$\begin{array}{c} \text{क उ}_3 \\ | \\ \text{क ओ ओ उ} \end{array} \longrightarrow \begin{array}{c} \text{क उ}_2\ \text{नो उ}_2 \\ | \\ \text{क ओ ओ उ} \end{array}$$

मज्जा

मज्जा मधुरिन और मज्जिकाम्ल के सम्मिलन से बना हुआ सम्मेल है। मधुरिन एक त्रिपरमाणुक मद्य है। और चूँकि मधुरिन में ३ उदौषील समूह होते हैं, इस हेतु यह तीन प्रकार के सम्मेल बना सकती है जो एक या दो या तीनों उदौषीलों की प्रक्रिया से बनते हैं। जानवरों के शरीर अथवा वनस्पतियों में अधिकतर त्रिमधुरिद ही पाये जाते हैं।

जैनूनिकाम्ल (क$_{१७}$ उ$_{३३}$ क ओ ओ उ), खजूरिकाम्ल (क$_{१५}$ उ$_{३१}$ क आ आ उ), और चर्बिकाम्ल (क$_{१७}$ उ$_{३५}$ क आ आ उ) यह प्रधान अम्ल हैं जिनके मधुरील सम्मेल खाद्य पदार्थ और जानवरों के शरीर में मिलते हैं।

क$_{१५}$ उ$_{३१}$ क ओ ओ उ + ओ उ क उ$_२$ क उ$_२$—ओ ओ क क$_{१५}$ उ$_{३१}$
                                        | |
क$_{१५}$ उ$_{३१}$ क आ आ उ + ओ उ क उ $\longrightarrow$ क उ —ओ आ क क$_{१५}$ उ$_{३१}$
                                        | |
क$_{१५}$ उ$_{३१}$ क आ आ उ + ओ उ क उ$_२$ क उ$_२$—ओ ओ क क$_{१५}$ उ$_{३१}$

खजूरिकाम्ल + मधुरिन $\longrightarrow$ मधुरील खजूरेत या मज्जा।

मज्जा और तेल में कोई विशेष रासायनिक अन्तर नहीं होता।

खाद्य पदार्थ का पाचन और समीकरण

प्रत्येक जीवधारी को भोजन की आवश्यकता तीन मुख्य कारणों से होती है। एक तो बढ़ाव के लिए, दूसरे नाना प्रकार की शारीरिक

क्रियाशीलता के लिए और तीसरे ऊँची श्रेणी के जीवधारियों में शारीरिक ताप को क़ायम रखने के लिए। अब यह स्पष्ट है कि भोजन की सामग्री जिस दशा में खाई जाती है उस दशा में शरीर के अंगों में नहीं पहुँच सकती। दाँतों-द्वारा भली भाँति विभाजित किये जाने पर भी सब कर्बोदित प्रत्यामिन अथवा मज्जा कलोद के रूप में होते हैं और इन कारणों से आँत के परदे से उनका प्रसरण नहीं हो सकता। इसके लिए यह आवश्यक है कि इन पदार्थों के अणु टूटकर छोटे प्रसरणिक अणुओं के रूप में आ जायें। इसके अतिरिक्त शरीर के कोष्ठ हर प्रकार के कर्बोदित ग्रहण नहीं कर सकते। यवोज, दुग्धोज, इक्षु-शर्करा इत्यादि ऐसे पदार्थ हैं जो नित्य ही भोजन किये जाते हैं, परन्तु शरीर के कोष्ठ इनको ग्रहण नहीं कर सकते। यह आवश्यक है कि इन पदार्थों के अणु पहले एक-शर्करिद के रूप में परिणत किये जायें। इसी प्रकार प्रत्यामिन के अणु भी बदलते हैं चाहे उनका उपयोग शरीर के बढ़ाव में हो, चाहे सामर्थ्य के विकास में। प्रत्यामिन के अणु टूटकर कई प्रकार के अमिनो-अम्ल का रूप धारण करते हैं। इसी प्रकार मज्जा, मज्जिकाम्ल या साबुन और मधुरिन बन जाते हैं।

खाद्य पदार्थ का मुख में पाचन

यह सर्वसाधारण जानते हैं कि रोटी या चावल कुछ समय तक मुख में चबाये जाने पर मीठे मालूम होने लगते हैं यद्यपि ये नशास्तक पदार्थ स्वयं मीठे नहीं होते। इसका कारण यह है कि जिस समय भोजन मुख में पहुँचता है उस समय मुँह में बहुत-

सा लाला भर आती है और यह लाला नशास्ता को दक्षिणिन और यवोज के रूप में परिणत कर देती है। लाला-क्षरण करनेवाले तीन मुख्य अंग होते हैं—(१) कर्णाग्रवर्ती लालाग्रन्थि, (२) हन्वधोवर्ती लालाग्रन्थि, (३) जिह्वाधोवर्ती लालाग्रन्थि। इनके अतिरिक्त मुँह की पूरी श्लैष्मिक कला छोटी-छोटी ग्रन्थियों से भरी हुई है। दाँतों-द्वारा चबाये जाने और लाला के मिलने से नशास्ता पहले निर्घुलनशील से घुलनशील बन जाता है। तत्पश्चात् यह घुलनशील नशास्ता उदश्लेषक विश्लेषण के कारण उषन-दक्षिणिन और यवोज के रूप में परिणत हो जाता है। उषन-दक्षिणिन फिर अविच्छिन्न उदश्लेषक-द्वारा निरंगी-दक्षिणिन और यवोज और अन्त में दक्षिणिन और यवोज बन जाता है। तात्पर्य्य यह कि नशास्ता दक्षिणिन और यवोज का रूप पकड़ लेता है; परन्तु सारा नशास्ता मुँह में इस दशा को नहीं प्राप्त होता। मुँह में भली भाँति चबाये जाने और लाला-मिश्रण के बाद भी नशास्ता का एक बड़ा भाग अपनी पूर्व दशा में ही पेट के अन्दर पहुँचता है।

नशास्ता का यह परिवर्तन लाला में प्रस्तुत एक खमीर के द्वारा होता है जिसे 'टाइआलिन' कहते हैं। कुत्ते इत्यादि मांसाहारी जानवरों की लाला में यह खमीर नहीं पाया जाता और इस कारण ऐसे जानवरों की लाला का कोई प्रभाव नशास्ता पर नहीं पड़ता।

लाला के इस दास्तेजिक खमीर का प्रभाव अधिकांश पकाये हुए नशास्ता पर ही पड़ता है। कच्चे नशास्तात्मक खाद्य पदार्थों पर

इसका बहुत कम असर पड़ता है। इस कारण यदि किसी मनुष्य को कच्चा नशास्तात्मक भोजन खिलाया जाये तो इसका बहुत बड़ा भाग बिना पचे हुए ही मल के साथ निकल जायेगा।

यह ऊपर कहा जा चुका है कि नशास्तात्मक खाद्य का एक बड़ा भाग अपनी इसी दशा में पेट के भीतर पहुँचता है। पेट के ऊर्ध्वांश में भोजन एक गोले के रूप में पड़ा रहता है और ३०-४० मिनट के पहले इसके अन्दर पेट की ग्रंथियों से निकले हुए उदहरिकाम्ल का प्रवेश नहीं होता। इस बीच में टाइआलिन की प्रक्रिया नशास्ता पर निरन्तर हुआ करती है। लाला क्षारीय होती है और पेट में उदहरिकाम्ल से मिश्रित हो जाने पर इसकी क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है; परन्तु इस मिश्रण के पहले ही लाला अपना बहुत कुछ प्रभाव डाल चुकी होती है।

पेट में पाचन

भोजन के मुँह में पहुँचने के कुछ मिनट पश्चात् पेट की श्लैष्मिक कला से एक प्रकार का तरल पदार्थ निकलता है। इस तरल पदार्थ में उदहरिकाम्ल और 'पेप्सिन' पाया जाता है। यद्यपि भोजन करने के कुछ समय बाद पेट में दुग्धिकाम्ल भी कुछ मात्रा में पाया जाता है; परन्तु यह अम्ल पेट के क्षरित पदार्थ में नहीं होता। यह दुग्धिकाम्ल कर्बोदित के खमीरण से पैदा होता है जो कीटाणुओं-द्वारा आरम्भ होता है। उदहरिकाम्ल के प्रभाव से इक्षु-शर्करा का विपर्यय हो जाता है और उसकी जगह फलोज और द्राक्षोज पाये जाते हैं। दूध का दधिनोजन अवक्षिप्त हो जाता है और

किसी अंश तक दक्षिणिन और यवोज का उदश्लेषण भी होता है। पेप्सिन प्रत्यामिन को पचाता है। पेप्सिन की क्रियाशीलता के लिए अम्लात्मक माध्यम आवश्यक है। पेट के भीतर उदहरिकाम्ल की उपस्थिति में पेप्सिन प्रत्यामिन को तोड़कर प्रत्योज और पेप्टोन में बदल देती है। भाँति-भाँति के प्रत्योज और पेप्टोन भिन्न-भिन्न अमिनो-अम्ल के पृथक्-पृथक् समूहों में एकत्रित होने से बनते हैं। ये अमिनो-अम्ल प्रत्यामिन के अणुओं के टूटने से बनते हैं। इसी प्रकार आमाशयिक रस-द्वारा केन्द्र-प्रत्यामिन के उदश्लेषण होने पर यह यौगिक टूट कर प्रत्योज, पेप्टोन और केन्द्रिन बन जाता है। दधिनोजन पर भी आमाशयिक रस का इसी तरह का प्रभाव पड़ता है। पहले घुलनशील दधिनोजन निर्घुलनशील दधिन बनता है। यह परिवर्तन घुलनशील खटिकम नमक की अनुपस्थिति में नहीं पाया जाता। निर्घुलनशील दधिन अन्त में आमाशयिक रस में घुल जाता है। फिर भी कुछ भाग अवक्षेप के रूप में शेष रह जाता है। दधिनोजन का परिवर्तन दधिन में एक खमीर रेनिन के द्वारा होता है।

आमाशयिक रस में एक और खमीर भी होता है जिसे 'लाइपेज' कहते हैं। यह खमीर मज्जा का उदश्लेषण करता है जिससे मज्जा स्वतन्त्र मज्जिकाम्ल में परिणत हो जाता है। यह परिवर्तन उदहरिकाम्ल के द्वारा भी घटित होता है।

आंत्रिक पाचन

आमाशय में किसी अंश तक पचा हुआ अम्लात्मक खाद्य पदार्थ जब पक्वाशय में पहुँचता है तो उसमें कई प्रकार के रस

पहुँचते हैं। ये रस तीन मुख्य ग्रन्थियों में बनते और पृथक्-पृथक् प्रणालियों से पक्वाशय में पहुँचते हैं। ये ग्रन्थि हैं (१) यकृत, (२) क्लोम और (३) नल्याकार आंत्रिक ग्रन्थियाँ। इनके अतिरिक्त ब्रुनर के ग्रन्थि का रस भी पक्वाशय में पहुँचता है।

क्लोमरस का विशेष प्रभाव प्रत्यामिन पर पड़ता है। प्रत्यामिन के अणु अन्त्र में पहुँचने के थोड़े समय पीछे ही टूटकर अमिनोअम्ल में परिणत हो जाते हैं। यह परिवर्तन क्लोमरस के कारण घटित होता है। प्रत्योज और पेप्टोन की भी यही दशा होती है। परन्तु कई घंटे की प्रक्रिया के पश्चात् भी कुछ प्रत्यामिन अणु भङ्ग नहीं हो पाते। और एक दिनों की निरन्तर प्रक्रिया के बाद भी कुछ बहुपेप्टाइड पाये जाते हैं जो कई एक (२ या अधिक) अमिनो-अम्लों के संगठन से बनते हैं। यह घटना क्लोम-रस में प्रस्तुत एक खमीर के द्वारा देखने में आती है। इसे 'ट्रिप्सिन' कहते हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि क्लोम-रस क्षरणित होने पर क्रियाशील नहीं पाया जाता। पक्वाशय में पहुँचने पर आंत्रिक रस के मिश्रित होने पर यह क्रियाशील होता है। कारण यह कि क्लोम-रस में ट्रिप्सिनोजन होता है और यह खमीर स्वयं क्रियाशील नहीं होता; परन्तु आंत्रिक रस में प्रस्तुत एक खमीर (एण्ट्रोकाइनेज़) के द्वारा यह एक अत्यन्त प्रभावशाली प्रेरकाणु (ट्रिप्सिन) में परिणत हो जाता है। क्लोम रस क्षारीय होता है; परन्तु आमाशय की अन्तर्गत वस्तु अम्लात्मक होती है। इस कारण जब क्लोम-रस पक्वाशय में पहुँचता है तो वहाँ अम्लात्मक

अधपचे हुए खाद्य के मिलने से इसकी प्रक्रिया शिथिल हो जाती है। यद्यपि क्लोम-रस क्षारीय माध्यम में अधिक प्रक्रियाशील होता है, परन्तु देर तक होनेवाली प्रक्रियाओं के लिए शिथिल माध्यम ही अधिक लाभदायक समझा जाता है। कारण यह कि यदि यह प्रक्रिया क्षारीय माध्यम में अधिक समय तक घटित हो तो ट्रिप्सिन का बहुत जल्द नाश हो जाता है। अंत्र के अन्तिम भाग में प्रत्यश्लेषक क्रिया-शीलता बिलकुल नहीं पाई जाती। ट्रिप्सिन प्रत्यामिन का उदश्लेषण अंत्र के पहले भाग में ही करता है। इसी प्रकार क्लोम-रस दूध को भी पचाता है। दुग्ध में क्लोम-रस डालने और थोड़ी देर गरम करने पर एक थक्का बन जाता है जो पुनः घुल जाता है। यह घटना ट्रिप्सिन के कारण घटित होती है। परन्तु यह भी सम्भव है कि इस प्रक्रिया की कार्य्यकारिका कोई और खमीर है।

क्लोम-रस में एक प्रभावशाली खमीर होता है जिसे 'केलिलेज' कहते हैं। केलिलेज का प्रभाव नशास्ता पर वही होता है जो टाइआलिन का होता है। अर्थात् इसके प्रभाव से नशास्ता पहले उपनो-दक्षिणिन और फिर यवोज में परिणत हो जाता है। क्लोम-रस में इसी प्रकार का एक और खमीर भी होता है जिसे 'यवेज' कहते हैं। यवेज का काम है यवोज को दक्षिणोज या द्राक्षोज में परिणत करना। इक्षु-शर्करा और दुग्ध-शर्करा पर क्लोम-रस का कोई प्रभाव नहीं पड़ता; क्योंकि इसमें विपर्ययेज और दुग्धेज नहीं होते।

क्लोम-रस में लाइपेज होता है जो शिथिल मज्जा को तोड़कर मज्जिकाम्ल और मधुरिन में परिणत कर देता है। यह खमीर क्षारीय

माध्यम में या शिथिल माध्यम में अधिक क्रियाशील होता है। आम्लिक माध्यम में इसकी क्रियाशीलता भङ्ग हो जाती है। मज्जा के टूटने से बना हुआ मज्जिकाम्ल क्षार से संयुक्त होकर साबुन बनता है। लाइपेज़ पानी में निर्घुलनशील होता है, पर मधुरिन में भली भाँति घुल जाता है। पित्त के मिलने से लाइपेज़ की क्रियाशीलता बहुत बढ़ जाती है। कारण यह कि पित्त के नमक जल और मज्जा के बीच पृष्ठ-तनाव कम करते हैं, जिससे खमीर का घोल और मज्जा का परस्पर मिलाव अधिक बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त पित्त के नमक खमीर के घोलन में भी सहायक होते हैं। हलके आम्लीय माध्यम में पित्त के नमक मज्जिकाम्ल और साबुन को भी घुला डालते हैं। मज्जिकाम्ल के सम्मेल का उदश्लेषण भी लाइपेज़ के द्वारा होता है।

पित्त—यह ऊपर कहा जा चुका है कि पित्त के मिश्रण से क्लोम-रस की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। पित्त में एक खमीर होता है, परन्तु पित्त की उपयोगिता उसमें घुले हुए नमकों पर है, जैसा कि कहा जा चुका है। यह नमक मज्जा और पानी के बीच पृष्ठ-तनाव को कम करते हैं। पित्त में घुले हुए मज्जिकाम्ल, मधुरिन और साबुन जब आंत्रिक श्लैष्मिक कला में पहुँचते हैं तो उनका पुनः संश्लेषण होता है जिससे वे फिर मज्जा के रूप में परिणत हो जाते हैं। पित्त के नमक अब फिर से संयुक्ता शिरा-द्वारा यकृत में पहुँचते हैं।

अंत्र में खाद्य पदार्थ पहुँचने पर क्लोम-रस और पित्त के अतिरिक्त एक और रस का संचार होता है और वह है आंत्रिक रस। इस रस में सैन्धक-हरिद, सैन्धक-कर्बोदित, रक्तरस-अण्डसित

रक्तरस-लोबुलिन और कई एक खमीर होते हैं। एरेप्सिन अण्ड-सितोज और पेप्टोन को अमिनो-अम्ल में परिणत करता है। विपर्ययेज इक्षु-शर्करा को द्राक्षोज और फल-शर्करा में परिणत करता है और इसी प्रकार यवेज यवोज को फल-शर्करा में। आंत्रिक रस में दुग्धेज भी होता है जिसके प्रभाव से दुग्ध-शर्करा, फल-शर्करा और दुग्धस्योज में बदल जाता है। इस प्रकार अंत्र में सब कर्बोदित खाद्य पदार्थ षष्ठोज में बदल जाते हैं और इसी रूप में उनका पचाव हो जाता है।

बृहत् अंत्र में पचाव

मांसाहारी प्राणियों में खाद्य पचाने के सम्बन्ध में बृहत् अंत्र का महत्त्व बहुत ही कम है। इसी कारण मांसाहारी प्राणियों का बड़ा बृहत् अंत्र बहुत छोटा होता है और अन्त्र-पुट या तो एक मात्र नहीं होता या बहुत छोटा होता है। इसके विपरीत शाकाहारी पशुओं का बृहत् अन्त्र बड़ा होता है और अंत्र-पुट भी इसी भाँति बड़ा होता है। मनुष्य की गिनती इस विचार से मांसाहारी और शाकाहारी जानवरों के मध्य में है। उसका बृहत् अंत्र न तो बहुत बड़ा होता है और न बहुत छोटा। शाकाहारी जानवरों का बृहत् अंत्र इसलिए बड़ा होता है कि शाक-पात का अधिकतर पचाव अंत्र-पुट में आकर होता है। शाक-सब्ज़ी में खाद्य पदार्थ छिद्रोज कोष-भित्तिका के भीतर बन्द होता है और चूँकि ऊँचे श्रेणी के जानवरों में किसी में छिद्रेज (साइटेज़) नहीं होता जिससे कि कोष-भित्तिका गल सके और वास्तविक खाद्य पदार्थ एकीकरण के लिए मिल सके। यह कार्य कीटाणुओं-द्वारा होता

है। यह क्रिया अंत्र-पुट में जाकर होती है। छिद्रोज के गलने से कई मज्जिकाम्ल, उदजन, दारेन और कर्बन-द्विओषिद बनते हैं। यह सब वस्तु और खाद्य पदार्थ जो छिद्रोज के गलने से स्वतन्त्र हो जाते हैं, बृहत् अंत्र की दीवार-द्वारा सोख लिये जाते हैं। मांसाहारी जानवरों में भोजन का पचाव यहाँ पर नहीं होता। मांस का प्रत्यामिन बृहत् अंत्र में पहुँचते समय तक एकमात्र पच चुका होता है। इसी प्रकार जो मनुष्य अधिकांश मांस का ही भोजन करते हैं उनका बृहत् अंत्र समीकरण में कोई विशेष भाग नहीं लेता। बृहत् अंत्र तक पहुँचने के पूर्व ही खाद्य पच चुका होता है।

लाला-क्षरण-विधि

इसमें कोई संदेह नहीं कि लाला-क्षरण प्रत्यावर्तनद्वारा घटित होता है। मुख की श्लैष्मिक कला पर खाद्य पदार्थ के स्पर्श से उत्पन्न उत्तेजना केन्द्रगामी नाड़ियों के द्वारा मध्यस्थ वात-मंडल तक पहुँचती है और फिर केन्द्र-त्यागी नाड़ियों-द्वारा वापस आकर लाला-ग्रन्थियों को उत्तेजित करती है। लाला-प्रवाह वर्तित प्रत्यावर्तन-द्वारा भी देखा जाता है। अर्थात् भोजन मुँह में पहुँचने के पहले ही लाला-प्रवाह आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार के बहुत-से प्रयोग किये जा चुके हैं। शाकाहारी पशुओं में कर्णाग्रवर्ती लाला-ग्रन्थि से क्षरण सदैव हुआ करता है। लाला-प्रवाह खाते समय अधिक, पगुरी के समय उससे कम और विश्राम के समय उससे भी कम होता है। खाने के समय क्षरण सब लाला-ग्रन्थियों से होता है। परन्तु

पागुर और विश्राम के समय जिह्वाधोवर्ती और हन्वधोवर्ती से लाला नहीं निकलती; केवल कर्णाग्रवर्ती लाला-ग्रन्थि क्रियाशील होती है।

आमाशय का ग्रन्थियों की क्षरण-क्रिया खाद्य पदार्थ के मुँह में पहुँचने और चबाये जाने से ही आरम्भ हो जाती है। इससे यह सिद्ध हुआ कि यह क्षरणक्रिया भी प्रत्यावर्तन-द्वारा होती है। भूखे जानवर के पेट में केवल भोजन की सामग्री देख लेने से ही क्षरण का संचार हो जाता है। ऐसी दशा में केन्द्रगामी नाड़ी सूत्र, दृष्टिनाड़ी, श्रवणनाड़ी वा घ्राणनाड़ी हो सकती है। केन्द्र-त्यागी नाड़ी, जिसके द्वारा उत्तेजना ग्रन्थियों तक पहुँचती है, सहवात मंडल के नाड़ी या वेगस हो सकते हैं। वेगस यदि दोनों ओर से खंडित कर दिया जाय तो प्राणी का शरीर इन वर्तित प्रत्यावर्तन की योग्यता खो बैठता है। अर्थात् केवल भोजन देखने या सूँघने से आमाशय की ग्रन्थियाँ क्रियाशील नहीं होतीं, परन्तु आमाशय की पूरी क्षरण-क्रिया प्रत्यावर्तन पर निर्भर नहीं। कुछ क्षरण खाद्य पदार्थ के पेट में पहुँचने पर उससे स्पर्श होने के कारण भी होता है। यह क्रिया आमाशय की नाड़ियों के खंडित करने पर भी घटित होती है। इसका कारण स्पर्शक उत्तेजना भी नहीं हो सकती; क्योंकि केवल संवर्ष से ग्रन्थियाँ क्रियाशील नहीं हो जातीं; फिर आमाशय में हर प्रकार के खाद्य पदार्थ डालने से यह घटना नहीं देखी जाती है। रोटी, भात, अण्डे की सफ़ेदी इत्यादि रखने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता; परन्तु मांस या आमाशय के रस में पहले कुछ समय तक पकी हुई रोटी रखने से आमाशयिक रस का

क्षरण आरम्भ हो जाता है और यह दशा आमाशय की तमाम नाड़ियों के काट देने पर देखने में आती है। इसलिए कुछ विद्वानों की यह सम्मति है कि यह क्षरण प्रान्तस्थ प्रत्यावर्तन के द्वारा होता है। दूसरी राय यह है कि यद्यपि आमशयिक रस में आधी पचाई हुई वस्तुओं को रक्त-धारा में सीधे इञ्जेक्ट करने से आमाशयिक ग्रन्थियों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु यह सम्भव है कि यह वस्तु पेट की श्लैष्मिक कला पर एक विशेष प्रभाव डालती है जिससे एक उत्तेजनात्मक पदार्थ उत्पन्न होता है जो रक्तधारा में मिलकर आमाशयिक ग्रन्थियों को उत्तेजित करता है। यह बात प्रयोग-द्वारा स्थापित की जा चुकी है। अभिप्राय यह कि आमाशय में क्षरण-क्रिया दो कारणों से आरम्भ होती है—एक तो मुख की श्लैष्मिक कला पर खाद्य पदार्थ के पड़ने से प्रत्यावर्तन-क्रिया के द्वारा या भूख लगने से मस्तिष्क के ऊँचे श्रेणी के केन्द्रों के उत्तेजित होने से। दूसरा कारण रासायनिक है। दक्षिणांश श्लैष्मिक कला में एक हारमोन बनता है जो रक्त में सोख जाकर तमाम पेट में फैलता है और जिसके प्रभाव से आमाशयिक ग्रन्थि में क्षरण-क्रिया आरम्भ हो जाती है।

क्लोम-रस का क्षरण

बेलिस और स्टारलिंग ने यह सिद्ध कर दिखाया कि क्लोम-रस का क्षरण वात-मंडल-सम्बन्धी प्रत्यावर्तन पर आधारित नहीं है। विपरीत इसके क्लोम-रस-क्षरण का कारण रासायनिक है। पेट के अन्तर से उदहरिकाम्ल-मिश्रित खाद्य पदार्थ जब पक्वाशय में पहुँचता है तो उसके श्लैष्मिक-कला के कोष्ठों

में एक रासायनिक संवाद-वाहक उत्पन्न होता है जो 'सिक्रीटिन' के नाम से प्रसिद्ध है। यह सिक्रीटिन रक्त में सोखे जाने पर जब क्लोम तक पहुँचता है तो उसके प्रभाव से क्लोम-रस का क्षरण आरम्भ होता है। यदि पक्वाशय की श्लैष्मिक कला छीलकर उसे बालू और हलके उदहरिकाम्ल में मला जाय और फिर इस मिश्रण को शिथिल बनाकर और छानकर इन्जेक्ट किया जाय तो क्लोम-रस बड़ी मात्रा में निकलने लगता है।

पित्त-क्षरण

इसके कहने की आवश्यकता नहीं कि पित्त-क्षरण के अतिरिक्त और भी बहुत-सी महत्त्वपूर्ण क्रियायें यकृत को करनी होती हैं। संयुक्ता शिरा पोषण-संस्थान से होकर यकृत में पहुँचती है और उसके प्रवाह में खाद्य पदार्थ इस ग्रन्थि तक पहुँचते हैं। यहाँ याकृतिक कोष्ठ आवश्यकता से अधिक मात्रा में विद्यमान शर्करा को निर्घुलनशील मधुजन के रूप में परिणत करके जमा कर लेते हैं। हानिकारक नोषजनीय पदार्थों को यकृत मूत्रिया बनाता है जिससे वह सहज ही वृक्क-द्वारा क्षरणित किये जा सकते हैं। मनुष्य का यकृत प्रतिदिन ८०० वा ९०० ग्राम पित्त का क्षरण करता है।

पित्त-क्षरण का कारण भी वही है जो क्लोम-रस के क्षरण का है। अर्थात् उदहरिकाम्लमिश्रित खाद्य पदार्थ जब आमाशय से पक्वाशय में पहुँचता है तो पक्वाशय की श्लैष्मिक कला के कोष्ठों में एक विशेष प्रकार की उत्तोजनात्मक वस्तु उत्पन्न होती है, जो

रक्तधारा-द्वारा यकृत में पहुँचकर उसको उत्तेजित करती है। यह अभी भली भाँति निश्चित नहीं कि क्लोम और यकृत दोनों को उत्तेजित करनेवाला पदार्थ एक ही है (सिक्रीटिन) या भिन्न-भिन्न। इसके अतिरिक्त पित्त-प्रवाह का वेग पित्त के नमकों के इञ्जेक्ट करने से भी बढ़ता है।

कण-रञ्जक इञ्जेक्ट करने से भी पित्त में पित्त-रुबिन की मात्रा बढ़ती है और इस प्रकार के ओषधि जो कण-रञ्जक को घुला डालती हैं उनके इञ्जेक्ट करने से पित्त-प्रवाह की मात्रा बढ़ती है।

आन्त्रिक रस के क्षरण का मुख्य कारण भी वही है जो पित्त और क्लोम-रस के प्रवाह का कारण है। उदहरिकाम्ल मिला हुआ खाद्य जब आमाशय से पक्वाशय में पहुँचता है, तो उस समय क्लोम-रस, पित्त और आन्त्रिक रस तीनों का प्रवाह आरम्भ हो जाता है जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। उदहरिकाम्ल के प्रवाह से पक्वाशय की श्लैष्मिककला में एक प्रकार की उत्तेजनात्मक ओषधि की उत्पत्ति हो जाती है और यह ओषधि रक्त-प्रवाह-द्वारा अन्य ग्रन्थियों में पहुँचकर उनको क्रियाशील करती है। यह अभी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं कि इन तीनों ग्रन्थियों को उत्तेजित करनेवाली ओषधि एक ही है (सिक्रीटिन) या अलग-अलग। पक्वाशय की श्लैष्मिक कला को बालू और उदहरिकाम्ल से मलकर और उसके रस को शिथिल बनाकर और छानकर इञ्जेक्ट करने से तीनों रसों का प्रवाह आरम्भ हो जाता है और यह प्रभाव पोषण-संस्थान की नाड़ियों को काट

डालने पर भी शेष रहता है। जिससे यह सिद्ध होता है कि इन तीनों ग्रन्थियों की क्रियाशीलता वातमंडल पर निर्भर नहीं है।

आंत्रिक रस. आंत्रिक रस के इञ्जेक्ट करने से भी क्षरण होने लगता है। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है। खाद्य पदार्थ जब पक्वाशय में पहुँचता है तो सिक्रीटिन-द्वारा आंत्रिक रस का क्षरण होता है। और यह आंत्रिक रस अब स्वयं अंत्र के आगे के भागों को उत्तेजित करता है जिससे उन स्थानों पर खाद्य के पहुँचने के प्रथम ही आंत्रिक रस का क्षरण आरम्भ हो जाता है।

खाद्य का शोषण

खाद्य पदार्थ का मुख्य शोषण अंत्र में होता है, आमाशय में बहुत ही कम। जल का शोषण तो आमाशय में बिलकुल नहीं होता; यद्यपि मदिरा, पेप्टोन और चीनी का शोषण कुछ मात्रा में होता है। खाद्य का समाहरण यदि अधिक हो तो उसका शोषण पेट में अधिक और अंत्र में पहले की अपेक्षा कम होता है।

जल के शोषण का नियंत्रण वातमण्डल-द्वारा होता है। यदि शरीर से अधिक जल की हानि हो जाय तो यह कमी पूरी करने के लिए पानी पीने की आवश्यकता होती है। प्यास लगती है, जिसमें मस्तिष्क के ऊँचे श्रेणी के केन्द्रों का अंतर्भूत होता है। परन्तु इसका कोई प्रभाव अंत्र के जल-शोषण की योग्यता पर नहीं होता। अर्थात् चाहे शरीर के मांसतन्तुओं को अधिक जल की आवश्यकता हो, चाहे न हो, अंत्र की श्लैष्मिककला को जब जल मिलेगा, उसका

शोषण अवश्य होगा। अब प्रश्न यह उठता है कि पानी और नमक का घोल आंत्रिक श्लैष्मिककला के कोष्ठों में कैसे पहुँचता है। श्लैष्मिककला का भीतरी धरातल एक झिल्ली का बना होता है। यह झिल्ली लीप्वाइड की होती है और इसलिए इसको पार करके रक्तधारा व लसीका तक वही पदार्थ पहुँच सकता है जो लीप्वाइड में घुलनशील हो। यदि यह धारणा ठीक हो तो इस प्रकार की वस्तु, जो लीप्वाइड में घुलनशील नहीं हैं, जैसे शर्करा और सैन्धक-हरिद, इनका शोषण श्लैष्मिककला के कोष्ठों-द्वारा नहीं हो सकता। अन्तरतान्तविक पदार्थ इस प्रकार का हो सकता है जिसमें ये सब पदार्थ घुलनशील हों, परन्तु यह धारणा ठीक नहीं है, क्योंकि शोषण निस्सारक-सिद्धान्त के अनुकूल नहीं होता। केवल जल का शोषण तो रक्त-रस के कलोद के निस्सारक दबाव के कारण भी हो सकता है। परन्तु यह देखा जाता है कि सम-शाक्तिक और अधिक-शाक्तिक घोल भी यदि अंत्र में रक्खे जाएँ तो उनका भी शोषण हो जाता है। यह शोषण निस्सारक दबाव के प्रतिकूल होगा। यदि रक्त-रस (उसी जानवर का जिस पर प्रयोग किया जा रहा हो) अंत्र में डाला जाय तो उसका शोषण भी उसी प्रकार हो जायगा जैसे नमक के घोल का। यह स्पष्ट है कि आंत्रिक ग्राहकांकुर के केशिका के रक्त का और अंत्र में पड़े हुए रक्त-रस का निस्सारक दबाव एक ही है; फिर भी रक्त-रस का शोषण होता है इसका अर्थ यह है कि कोष्ठीय रासायनिक परिवर्तन से उत्पन्न शक्ति के द्वारा ही यह कार्य्य होता है। औषधों-द्वारा श्लैष्मिककला के कोष्ठों की सजीवता कम करने पर

उनकी यह शक्ति बहुत कम हो जाती है और सम्पूर्णतः नष्ट भी की जा सकती है।

कर्बोदित का शोषण

कर्बोदित चाहे जिस रूप में खाया जाय, पोषण-संस्थान के श्लैष्मिककला में पहुँचने के पहले वह एक-शर्करिद के रूप में परिणत हो जाता है और तब उसका शोषण होता है। यह परिवर्तन जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है पोषण-संस्थान-सम्बन्धी ग्रंथियों के रसों में प्रस्तुत विविध प्रकार के खमीरों-द्वारा होता है। कर्बोदित का शोषण अधिकांश अंत्र में होता है और अंत्रपुट तक पहुँचते-पहुँचते लगभग सब कर्बोदित का शोषण हो जाता है। श्लैष्मिककला से होकर कर्बोदित संयुक्ता शिरा में पहुँचता है। महालसीका वाहिनी अथवा धमनी में नहीं। इसका प्रमाण यह है कि यदि किसी स्तनदायी पशु को कर्बोदित का भोजन दिया जाय और कुछ समय पश्चात धमनी या महालसीका वाहिनी के रक्त की रासायनिक परीक्षा की जाय तो उसमें पहले की अपेक्षा अधिक शर्करा नहीं मिलती, परन्तु उसी समय यदि संयुक्ता शिरा के रक्त की परीक्षा की जाय तो शर्करा की वृद्धि स्पष्ट जान पड़ती है। एक-शर्करिद और द्वि-शर्करिद दोनों ही घुलनशील और प्रसरणशील हैं; परन्तु आंत्रिक श्लैष्मिक-कला एक-शर्करिद की अपेक्षा द्वि-शर्करिद के लिए कम प्रवेश्य है। द्वि-शर्करिद को शरीर के कोष्ठ उपभोग में नहीं ला सकते। यही कारण है कि यदि इक्षु-शर्करा या यवोज इञ्जेक्ट करें तो वे सम्पूर्णतः

वृक्क-द्वारा क्षरणित हो जाते हैं और यकृत में भी इस कारण मधुजन की मात्रा नहीं बढ़ पाती। यदि इक्षु-शर्करा अधिक मात्रा में भी खिलाई जाय तब भी उसका पता जल्दी रक्त या मूत्र में नहीं मिलता, क्योंकि इसका शोषण जल्दी नहीं होता। परन्तु सौ ग्राम से अधिक द्राक्षोज खिलाने पर यह पदार्थ रक्त और मूत्र में मिलता है। कारण यह कि एक-शर्करिद बिना किसी परिवर्तन के ही तुरन्त आंत्रिक भित्तिका-द्वारा सोख लिया जाता है।

प्रत्यामिन का शोषण

यह ऊपर कहा जा चुका है कि आमाशयिक रस के प्रभाव से प्रत्यामिन आमाशय के भीतर टूटकर अएडसितोज और पेप्टोन बन जाता है। फिर क्षुद्रांत्र में पहुँचने पर इसका उदकरण और अधिक मात्रा में होता है। और अएडसितोज और पेप्टोन अमिनो-अम्ल और बहु-पेप्टाइड में परिणत हो जाते हैं। यह परिवर्तन क्लोम-रस में प्रस्तुत खमीर ट्रिप्सिन-द्वारा होता है—और आंत्रिक रस के खमीर एरेप्सिन-द्वारा भी यही परिवर्तन घटित होता है। अमिनो-अम्ल आंत्रिक श्लैष्मिककला-द्वारा सोख लिये जाते हैं। और फिर यहाँ से रक्त-प्रवाह में पहुँचते हैं। लसीका-वाहिनी में अमिनो-अम्ल नहीं जाते; परन्तु यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि खाद्य का सब प्रत्यामिन अमिनो-अम्ल के रूप में ही रक्त-प्रवाह में पहुँचता है या कुछ निरर्दित अवस्था में ही रक्त-धारा में प्रवेश करता है। इसमें संदेह नहीं कि प्रत्यामिन का एक छोटा भाग अपनी उसी

दशा में रक्त-धारा में पहुँचता है; परन्तु अधिकांश शोषण के पहले प्रत्यामिन अण्डसितोज, पेप्टोन और अमिनो-अम्ल में परिणत हो जाता है। और अण्डमितोज और पेप्टोन श्लैष्मिककला में अमिनो-अम्ल बन जाते हैं। अर्थात् रक्त-प्रवाह में पहुँचने के पूर्व प्रत्यामिन अमिनो-अम्ल का रूप प्राप्त कर लेता है।

मज्जा का शोषण

खमीरों के प्रभाव से मज्जा, मज्जिकाम्ल और मधुरिन में परिणत हो जाता है और माध्यम क्षारीय होने पर मज्जिकाम्ल क्षार से मिलकर साबुन बन जाता है। साबुन और मज्जिकाम्ल पित्त में घुलकर श्लैष्मिककला में पहुँचते हैं। श्लैष्मिककला के कोष्ठों के भीतर फिर मधुरिन और मज्जिकाम्ल का संश्लेषण होता है और मज्जा बनता है, जो लसीका-वाहिनी में होकर महालसीका-वाहिनी-द्वारा शरीर में चारों ओर पहुँचता है। खाद्य के बृहन् अंत्र में पहुँचने के प्रथम मज्जा लगभग सम्पूर्णतः पच जाती है।

खाद्य का रासायनिक परिवर्त्तन—कर्बोदित

जैसा कि पहले कहा जा चुका है खाद्य का कर्बोदित भाग, चाहे वह जिस रूप में खाया गया हो, अन्नमार्ग में इक-शर्करिद में परिवर्तित होकर ही रक्त-पेशिका में पहुँचता है। ये इक-शर्करिद हैं (१) फ्लोज, (२) दुग्धस्योज, (३) द्राक्षोज—ये तीनों प्रकार के एक-शर्करिद सहज ही एक दूसरे में परिणत हो जाते हैं। इनमें से

किसी एक का घोल यदि कुछ दिनों के लिए रख छोड़ा जाय तो इन तीनों प्रकार के इक-शर्करिद उसमें मिलते हैं और कुछ मात्रा में मैनोज भी पाया जाता है। विशेष बात यह है कि फलोज, दुग्धस्योज, द्राक्षोज और मैनोज के रूप में ही शर्करा का समीकरण ऊँचे श्रेणी के जीवधारियों के शरीर में होता है।

रक्त में अवकरण करनेवाली शर्कराओं की मात्रा सदैव एक ही रहती है (०·१% – ०·१५%)। अधिक मात्रा में कर्बोदित भोजन करने के पश्चात् भी रक्त की शर्करा की मात्रा नहीं बढ़ती। इसका कारण पहले-पहल क्लौडी बर्नार्ड ने बताया। क्लौडी बर्नार्ड ने देखा कि एक भूखे जानवर के यकृत शिरा में संयुक्ता शिरा की अपेक्षा अवकरण करनेवाली शर्करा की मात्रा अधिक होती है। जानवर के मरने पर तुरन्त यकृत के टुकड़े काटकर इसे पीसकर इसका उद्धरण निकालने पर यह ज्ञात हुआ कि इसमें अवकरण करनेवाली शर्करा बहुत ही कम है; परन्तु एक और प्रकार का कर्बोदित है. इसको अब 'मधुजन' कहते हैं। यह स्वाद और गन्धरहित होता है और इसक सूत्र और नशास्ता के सूत्र में कोई अन्तर नहीं ($क_६ उ_{१०} ओ_५$)न अम्लों और इमाइलोलिटिक खमीरों के प्रभाव से उदविश्लेपित होकर यह दक्षिणिन, यवोज और अन्त में द्राक्षोज बन जाता है। मृतक जानवर को यदि कुछ घंटे छोड़ देने के बाद उसका यकृत काटा जाय और उसका उद्धरण निकाला जाय तो उसमें शर्करा, विशेषकर द्राक्षोज, मिलता है। इसका कारण यह है कि मरने के बाद मधुजन खमीरण-द्वारा द्राक्षोज में परिवर्त्तित हो जाता है।

जब जानवर कर्बोदित खाता है तो यह कर्बोदित, द्राक्षोज, दुग्धस्योज, फलोज और मैनोज के रूप में आन्त्रिक श्लैष्मिककला के कोष्ठों और फिर रक्त-प्रवाह में पहुँचता है। संयुक्ता शिरा-द्वारा यह एक-शर्करिद जब यकृत में पहुँचता है तो संघट्टभवन-द्वारा इनका कुछ भाग मधुजन बन जाता है। शेष शर्करिद रक्त प्रवाह-द्वारा शरीर के अन्य-अन्य भागों में पहुँचते हैं और ओषिदीकरण से शक्ति उत्पन्न करते हैं।

अब यदि जानवर को कर्बोदित देना बन्द कर दिया जाय तो मधुजन शर्करा के रूप में परिणत होकर रक्त-प्रवाह में प्रवेश करता है। यह भली भाँति स्थापित है कि प्रत्यामिन या अमिनोअम्ल से भी मधुजन बनता है। यदि किसी कुत्ते को भूखा रक्खा जाय और उससे कोई काम भी करवाया जाय तो कुछ समय में यकृत में मधुजन नाममात्र को भी नहीं रह जाता। अब यदि कुत्ते को निरा प्रत्यामिन का ही आहार दिया जाय तो भी कुछ समय पश्चात् उसके यकृत में मधुजन मिलता है। परन्तु मज्जा से मधुजन बनते नहीं पाया गया है। यदि ऐसे जानवर को जिसके यकृत में मधुजन नहीं रह गया हो केवल मज्जात्मक आहार दिया जाय तो उसके यकृत में मज्जा बैठ जाती है, परन्तु मधुरिन जमा नहीं होता। यह कहा जा चुका है कि कर्बोदित का मुख्य कार्य्य जलकृ शक्ति उत्पन्न करना है। कर्बोदित के ओषिदीकरण के अन्तिम फल कर्बन-द्व्योषिद और जल हैं। परन्तु प्रक्रिया के

अन्त होने के पूर्व कर्बोदित कई एक रूपों में परिणत होता है, जैसा नीचे लिखा जाता है :—

(ड = दक्षिण भ्रामक
उ = उत्तर भ्रामक)

ड—द्राक्षोज

↓↑

क्रियाशील मधुरमद्यानार्द्र ⇄ मधुरिन

↓↑

वह्निविकामद्यानार्द्र ⇄ ड-रेशमिन

↓↑

ड—दुग्धिकाम्ल

↑↓

वाह्निकाम्ल

↓

सिरकोसिरकिकाम्ल ← सिरकमद्यानार्द्र ⇄ मद्य

↓

सिरकाम्ल

↓

कर्बन-द्विओषिद और जल

क उ$_२$ ओ उ. (क उ ओ उ)$_४$ क उ ओ.

↑↓

क उ$_२$ ओ उ. क उ ओ उ. क उ ओ ⇄ क उ$_२$ ओ उ.

क उ ओ उ. क उ$_२$ ओ उ.

↓↑

क उ$_३$. क ओ. क उ ओ. ⇄ क उ$_३$ क उ (नो उ$_२$) क ओ ओ उ.

↓↑

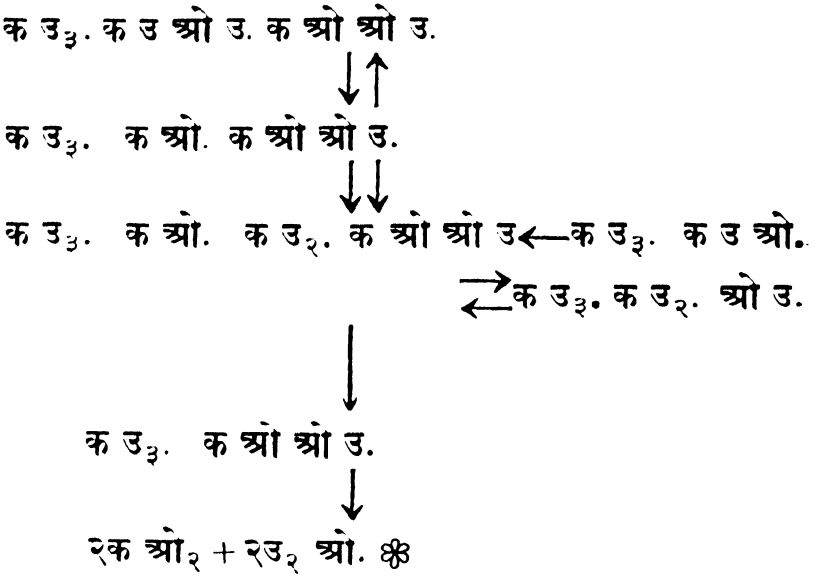

कर्बोदित के समीकरण से क्लोम का कितना महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है यह भली भाँति सिद्ध है। मेरिंग और मिनकाउस्की (१८८९) ने यह सिद्ध किया कि यदि किसी कुत्ते का क्लोम सम्पूर्णतः काटकर निकाल दिया जाय तो उसके मूत्र में शर्करा बहुत बड़ी मात्रा में निकलती है। वह मूत्र बहुत करता है और जल्द-जल्द। प्यास बहुत लगती है और बहुत जल्द वह मर जाता है (२ या तीन सप्ताह में)। अर्थ यह कि ऐसे कुत्ते में वे सब लक्षण पाये जाते हैं जो कि मधुमेह-ग्रसित मनुष्य में मिलते हैं।

यह लक्षण साधारण क्लोम-रस जिसकी व्याख्या ऊपर कर आये हैं उसके बन्द हो जाने से नहीं होता यह भी भली भाँति सिद्ध है। यदि क्लोम-प्रणाली को मोम का इञ्जेक्शन देकर बन्द

---

* Principles of General Physiology by Sir W. M. Bayliss.

कर दिया जाय तो प्राणी में मधुमेह का कोई लक्षण नहीं पाया जाता। इसके अतिरिक्त क्लोम काटकर उसका एक भाग दूसरी जगह चर्म के नीचे लगा देने से भी मधुमेह नहीं हो पाता। ऐसी अवस्था में क्लोम का सम्बन्ध अंत्र से अपने प्रणाली-द्वारा अन्त हो जाता है। परन्तु क्लोम का प्रभाव शर्करा के समीकरण पर वैसा ही बना रहता है। अब यदि क्लोम का छोटा भाग जो अन्य जगह लगा रक्खा गया है, हटा दिया जाय तो जानवर में सब लक्षण मधुमेह-ग्रसित रोगी मनुष्य के आ जाते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि साधारण क्लोम-रस के अतिरिक्त जो भोजन के बाद अंत्र में पहुँचता है, क्लोम से एक और पदार्थ उत्पन्न होता है जो बिना किसी प्रणाली के रक्त-धारा में पहुँचकर शरीर में चारों ओर पहुँचता है।

क्लोम-विहीन प्राणी के रुधिर में द्राक्षोज की मात्रा बढ़ जाती है। और इसी कारण मूत्र में भी द्राक्षोज पाया जाता है। रुधिर में द्राक्षोज की मात्रा .४ वा .५ प्रतिसैकड़ा होती है। और रुधिर में द्राक्षोज की यह मात्रा और मूत्र में उसका क्षरण उस अवस्था में भी पाया जाता है जब कि जानवर पूर्णतः भूखा रक्खा जाय या उसको केवल प्रत्यामिन या मज्जा खाने को दी जाय। प्रत्यामिनक खाना देने पर प्राणी के शरीर से द्राक्षोज और नोषजन दोनों का क्षरण बढ़ता है। केवल मज्जा खिलाने से द्राक्षोज का क्षरण अधिक नहीं होता। इससे यह सिद्ध होता है कि जब भोजन बन्द कर दिया जाता है तो शरीर के रगों का प्रत्यामिन टूट-टूटकर

द्राक्षोज बनता है जो रुधिर और मूत्र में पाया जाता है। ऐसे प्राणी में कर्बोदित के समीकरण की शक्ति नष्ट हो जाती है। यदि उसको द्राक्षोज किसी मात्रा में खिलाया जाय तो वह उसी मात्रा में मूत्र के साथ क्षरित हो जाता है। यकृत के भीतर का जमा मधुजन क्रमशः द्राक्षोज बन-बनकर रुधिर-प्रवाह में आ जाता है और फिर क्षरित हो जाता है। फिर भी मधुजन कुछ मात्रा में मांस, विशेषतः हृदय में पाया जाता है। शरीर क्षीण हो जाता है और अन्त में प्राणी मर जाता है।

ऐसा क्यों होता है यह आज भी भली भाँति नहीं जाना जा सका। कुछ वैज्ञानिकों को यह धारणा है कि क्लोम के निकाल देने से शरीर की रगों में कर्बोदित के शोषण की शक्ति का नाश हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि क्लोम-विहीन प्राणी में साधारण जानवरों की अपेक्षा कर्बोदित के समीकरण का सामर्थ्य बहुत ही कम होता है। यह बात इससे सिद्ध है कि ऐसे प्राणी को यदि द्राक्षोज खिलाया जाय तो उसका लगभग उसी मात्रा में मूत्र में क्षरण हो जाता है। परन्तु कर्बोदित के समीकरण की शक्ति का नाश प्रथम में पूर्णरूप से नहीं होता और जितना द्राक्षोज खिलाया जाता है वह सब मूत्र की राह बाहर नहीं निकलता बल्कि उसकी एक मात्रा शरीर मे शेष रह जाती है और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, हृदय के मांस में मधुजन ऐसी अवस्था में भी जमा होता है। दूसरा प्रभाव क्लोम निकालने का यह होता है कि शरीर के अन्य-अन्य भागों में जमी मज्जा रक्त-धारा में आ मिलती है।

दूसरी धारणा यह है कि क्लोम उखाड़ने के कारण यकृत में शर्करा की उत्पत्ति बढ़ती है। क्लोम यकृत को आवश्यकता से अधिक शर्करा बनाने से रोकता है। इस कारण जब शरीर से क्लोम निकाल डालते हैं तो इसका विशेष प्रभाव यकृत पर पड़ता है जो अपने मधुजन के भण्डार को और प्रत्यामिन को शर्करा बना डालता है और रक्त-प्रणालियों को इस पदार्थ से भर देता है। शर्करा अधिक होने से क्षरित होती रहती है। इस धारणा के अनुसार शरीर की रगों में कर्बोदेत के शोषण की शक्ति के नाश का कारण यह है कि रक्त में शर्करा बहुत अधिक होने का प्रभाव उन पर गरल के समान होता है। इस राय का किसी दर्जे तक समर्थन इस बात से होता है कि क्लोमहीन प्राणी के यकृत काट डालने से शर्करा रक्त से समूची लुप्त हो जाती है, जिससे यह सिद्ध हुआ कि शर्करा की उत्पत्ति यकृत में होती है। यह भी कहा जाता है कि क्लोम के साथ-साथ चुल्लिका-ग्रंथि भी यकृत को शर्करा बनाने से रोकती है और उपवृक्क अद्रिनलिन-क्षरणद्वारा यकृत की इस क्रिया को बढ़ाती है। जब क्लोम शरीर में से निकाल दिया जाता है तो उपवृक्क के प्रभाव से यकृत अधिक मात्रा में शर्करा उत्पन्न करने लगता है। परन्तु यह स्मरण रखने योग्य बात है कि अद्रिनलिन का प्रभाव यह होता है कि यकृत का मधुजन शर्करा में परिवर्तित होकर रक्त में पहुँच जाय। परन्तु क्लोम के खण्डित होने से मधुजन का भण्डार समाप्त होने पर शरीर की रगों के प्रत्यामिन शर्करा बन-बनकर क्षरित होने लगते हैं।

जिस मनुष्य को मधुमेह का रोग होता है उसकी दशा भी यही

होती है जिसका कुछ वर्णन ऊपर किया गया है। मूत्र में शर्करा की मात्रा बढ़कर ९,१० प्रतिसैकड़ा तक हो जाती है। मूत्र-त्तरण की आवश्यकता बहुत बढ़ जाती है, प्यास बहुत लगती है और बहुत भोजन करने पर भी शरीर क्रमशः निर्बल और क्षीण होता जाता है। श्वास और मूत्र में से सिरकेनी की गन्ध पाई जाती है। मूत्र में द्वि-सिरकाम्ल और ओप-नवनीतिकाम्ल पाये जाते हैं। विशेष बात यह है कि कर्बोदत के समीकरण की शक्ति बहुत कम हो जाती है।

यह कहा जा चुका है कि इस घटना से साधारण क्लोम-रस का कोई सम्बन्ध नहीं। क्लोम में साधारण ग्रन्थिक कोष्ठों के अतिरिक्त लैञ्जरहैन के क्षुद्र-द्वीप होते हैं। यह भली भाँति स्थापित है कि इनमें एक आंतरिक स्राव-विशेष उत्पन्न होता है जिसे इन्सुलिन कहते हैं।

एलेन (१९१३, १९२२) ने यह देखा कि यदि एक कुत्ते का क्लोम खण्डित करके निकाल दिया जाय परन्तु उसका एक भाग शरीर में लगा रहने दिया जाय तो संयम से खाना खाने पर उस कुत्ते में मधुमेह का कोई लक्षण नहीं मिलता। अब यदि कुत्ते को कर्बोदत खूब खिलाया जाय तो मधुमेह का आक्रमण बड़े वेग से आरम्भ होता है। क्लोम को देखने पर (अनुवीक्षण-यंत्र में विशेष विधियों से) यह मालूम हुआ कि लैञ्जरहैन्स के क्षुद्र द्वीपों के कुछ कोष्ठों के कण समूचे लुप्त हो गये हैं और वे बहुत फूली हुई अवस्था में हैं। परन्तु यदि कुछ दिनों के कुसंयम के बाद कुत्ते को भोजन फिर

नियमित मात्रा में दिया जाय तो वह फिर क्रमशः अपनी अवस्था को प्राप्त होते हैं और ऐसी दशा में यदि क्लोम अनुवीक्षण यंत्र में देखा जाय तो लैञ्जरहैन्स के कोष्ठों के कण ज्यों के त्यों बने मिलते हैं। यदि कुत्ते की दशा कुसंयम से अधिक ख़राब हो गई हो, तो लैञ्जरहैन्स के ये कोष्ठ अन्त में गलकर नष्ट हो जाते हैं।

बैण्टिंग और बेस्ट ने १९२२ में यह लिखा कि क्लोम के उद्धरण को इञ्जेक्ट करने पर रक्त में शर्करा की मात्रा बहुत कम हो जाती है। बैण्टिंग और बेस्ट के क्लोम-उद्धरण को इन्सुलिन कहते हैं और इसी ओषधि से अब मधुमेह की चिकित्सा होती है।

इन्सुलिन किस प्रकार शर्करा के समीकरण में सम्मिलित होता है यह ठीक तौर से नहीं कहा जा सकता। कुछ लोगों का यह विचार था कि इन्सुलिन-द्वारा रगों में ग्लाइकोज का ओषिदीकरण बढ़ता है। श्वास-लब्धि जाँचने से यह मालूम होता है कि शर्करा का दहन इन्सुलिन देने से अधिक नहीं होता। कुछ वैज्ञानिकों का यह भी विचार था कि सम्भव है कि इन्सुलिन के प्रभाव से शर्करा मधुजन या मज्जा में परिणत हो जाती है, परन्तु इस धारणा का प्रयोग-द्वारा समर्थन नहीं हो सका। डडली और मैरियन ने (१९२३) यह प्रयोग-द्वारा सिद्ध कर दिखाया कि इन दोनों घटनाओं में से कोई भी वास्तव में नहीं हो पाती।

विस्टर और स्मिथ (१९२२) ने एक महत्त्वपूर्ण विचार इस पर प्रकट किया। साधारण ग्लाइकोज दो प्रकार के समरूप ग्लाइकोजों से

मिलकर बना होता है। सीधी श्रेणी के मध्यानार्द्र के रूप में प्रस्तुत द्राक्षोज की मात्रा बहुत कम होती है। दोनों समरूप द्राक्षोज को घेरे का सूत्र प्रदान किया गया है—

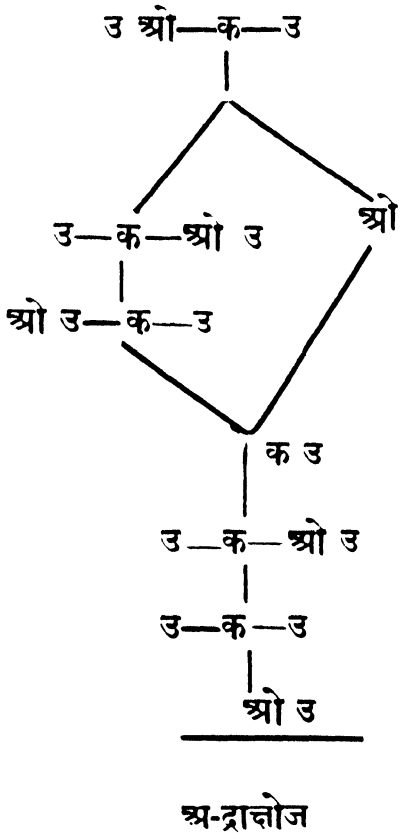

अ-द्राक्षोज

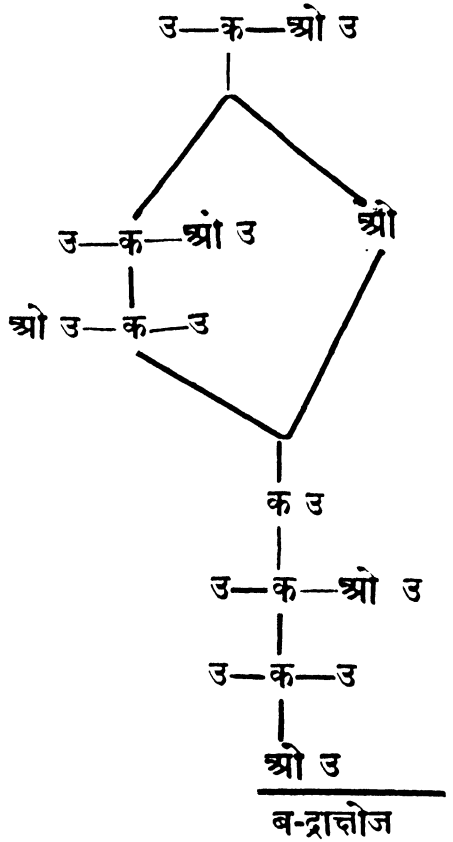

ब-द्राक्षोज

अधिकांश यही दोनों समरूप द्राक्षोज साधारण द्राक्षोज के घोल में होते हैं। तीसरे प्रकार का द्राक्षोज जो कम मात्रा में प्रस्तुत होता है उसका ग्राफ़-सम्बन्धी सूत्र यह है—

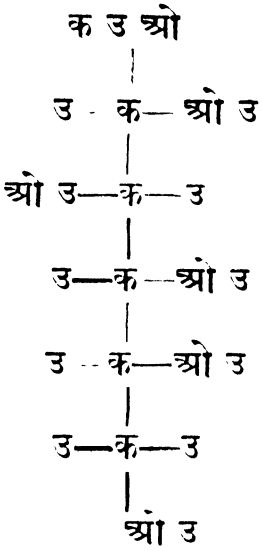

डडली और मैरियन ने यह पाया कि साधारण रक्त में का द्राक्षोज निम्नलिखित सूत्र का होता है (य—द्राक्षोज)—

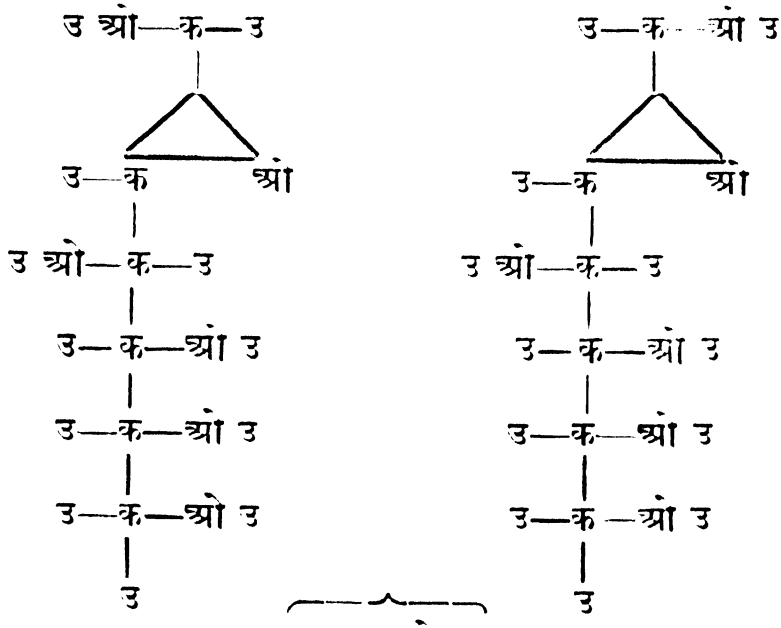

यह द्राक्षोज का घोल अ और ब द्राक्षोज के घोल की अपेक्षा अधिक प्रक्रियाशील होता है। मधुमेह-ग्रसित रोगियों के शरीर से निकाले हुए रुधिर का द्राक्षोज अ-और ब-द्राक्षोज होता है। विण्टर और स्मिथ के कथनानुसार इन्सुलिन अ और ब द्राक्षोज को अधिक प्रक्रियाशील रूप में अर्थात् य-द्राक्षोज में परिणत करता है जिससे इसका समीकरण शारीरिक कोष्ठ कर पाते हैं। मधुमेह-पीड़ित मनुष्य में इन्सुलिन के अभाव से यह परिवर्तन नहीं हो पाता और साधारण अ-और ब-द्राक्षोज को शरीर स्वीकार नहीं करता जिससे उनका क्षरण हो जाता है।

दूसरे वैज्ञानिकों ने इसका समर्थन नहीं किया है, परन्तु यह सम्भव मालूम पड़ता है कि रक्त का द्राक्षोज साधारण अ-और ब-द्राक्षोज का मिश्रण नहीं है। किन्तु और ही किसी रूप में प्रस्तुत होता है।

प्रत्यामिन

प्रत्यामिनक भोजन की आवश्यकता शरीर को दो कारणों से होती है। एक तो शरीर के बढ़ाव के लिए या भिन्न-भिन्न कार्य्यों के करने से उत्पन्न क्षीणता को दुरुस्त करने के लिए और दूसरा कार्य्यसञ्चालन के लिए आवश्यक शक्ति को ओषिदीकरण-द्वारा उत्पन्न करने के लिए।

यह ऊपर कहा जा चुका है कि आंत्रिक श्लैष्मिक कला में पहुँ-

चने के पूर्व प्रत्यामिन खमीरों की क्रियाशीलता से टूटकर भाँति-भाँति के अमिनोअम्ल में परिणत हो जाता है। कुछ वैज्ञानिकों की यह धारणा थी कि आंत्रिक श्लैष्मिककला में इन अमिनोअम्लों का फिर संश्लेषण हो जाता है जिससे रक्त-धारा में बने-बनाये प्रत्यामिन प्रवेश होकर शरीर के अन्य-अन्य भागों में पहुँचते हैं। यह धारणा सर्वथा ग़लत निकली। स्लाइक और मेअर (१९१८) ने यह देखा कि एक भूखे कुत्ते के १०० घन सेण्टीमीटर रक्त में ४ मिलीग्राम नोषजन के तुल्यार्थक अमिनोअम्ल प्रस्तुत है। मांस खिलाने पर यह १० मिलीग्राम हो जाता है। इसी तरह फोलिन और डेनिस ने भी इस बात का निर्णय किया और यह बताया कि अमिनोअम्ल का पुनर्विश्लेषण आंत्रिक प्राचीर में नहीं होता। इसी प्रकार का प्रमाण एबेल (१९१३), बुगलिया और डेलौनी (१९१३) के अनुसन्धानों से भी मिलता है। इन प्रयोगों में रक्त में अमिनोअम्ल की मात्रा बहुत कम पाई गई। इसका कारण यह बताया जाता है कि रगें रुधिर में प्रस्तुत अमिनोअम्ल को तुरन्त सोख लेती हैं। एक प्रयोग में १२ ग्राम रेशमिन इञ्जेक्ट किया गया। ५ मिनट के बाद ही उस कुत्ते के रुधिर में केवल १·५ ग्राम शेष रह गया। वृक्क-द्वारा भी केवल १·५ ग्राम रेशमिन क्षरित हुआ था। शेष सब रेशमिन रगों ने सोख लिया था।

यह प्रयोग-द्वारा भली भाँति स्थापित किया जा चुका है कि उत्तरोत्तर वृद्धि और क्षतिपूर्ति के लिए बहुत थोड़े से नोषजन की आवश्यकता पड़ती है। फिर अब यह प्रश्न उठता है कि शेष नोषजन

जो खाया जाता है उसका अन्त क्या होता है ? फोलिन (१९०५) ने यह बताया कि अधिकांश यह नोपजन मूत्र में मूत्रिया के रूप में निकलता है। फोलिन मूत्र में प्रस्तुत नोपजनिक पदार्थों को दो प्रकार का बताता है। एक आभ्यन्तरजनित और दूसरा बाह्यजनित। बाह्यजनित नोपजन भोजन से उत्पन्न होता है और आभ्यन्तरजनित शारीरिक रगों से। फोलिन ने बताया कि मांस कम देने पर मूत्र में प्रस्तुत नोपजन का ६० प्रतिसैकड़ा मूत्रिया के रूप में मिलता है। साधारण मात्रा में मांस खिलाने पर मूत्र के तमाम नोषजन का ८७ प्रतिसैकड़ा मूत्रिया के रूप में मिलता है और अधिक मांस खिलाने पर यह मूल्य ९० या ९५ प्रतिसैकड़ा हो जाता है। विपरीत इसके क्लतीनिन दोनों अवस्था में एक ही मात्रा में चरित होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि मूत्रिया अधिकांश बाह्यजनित होता है। प्रत्यामिनात्मक खाना अधिक मात्रा में खिलाने से ४ या ५ घंट में तमाम नोपजन का ५० प्रतिसैकड़ा मूत्रिया के रूप में मूत्र में निकल आता है। परन्तु यह तो मालूम है कि मांस का सम्पूर्ण भोजन पचने में ८, १० घंटे लग जायँगे। इस पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि भोजन का अधिकांश नोपजन मूत्र में मूत्रिया होकर निकलता है। यह ऊपर लिखा जा चुका है कि प्रत्यामिन अंत्र में अमिनोअम्ल के रूप में आ जाते हैं। यह अमिनोअम्ल बड़े सरल ढंग से मूत्रिया में परिणत हो जाते हैं।

यदि अन्य अन्य अंगों की लुगदी में अमिनोअम्ल मिलाये जायँ (जैसे केशिन, मधुन, ल्यूसिन और टायरोसिन) तो इसमें अमोनिया

की उत्पत्ति होती है। यदि लुगदी में अमिनोअम्ल न डाले जायँ तो अमोनिया नहीं निकलता है। इसका कारण यह है कि शरीर के अंगों में अमिन-विच्छेदक खमीर होते हैं जिनके प्रभाव से अमिनो-अम्ल का अमिन-विच्छेद हो जाता है। यही प्रक्रिया शरीर में होती है। खमीरों के प्रभाव से अमिनोअम्ल का अमिन-विच्छेद होता है जिससे अमोनिया उत्पन्न होता है। फिर यह अमोनिया मूत्रिया के रूप में परिणत हो जाता है। अमोनिया रुधिर में अमोनियम-कर्बनेत या अ०-कर्बामेत के रूप में प्रवेश करता है इसका अभी भली भाँति निर्णय नहीं हो सका है। परन्तु दोनों ही पदार्थों से अमोनिया अनार्द्रीकरण-द्वारा बन सकता है।

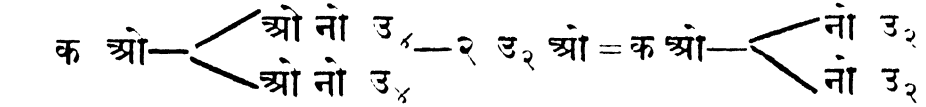

१ अमोनियम कर्बनेत—२ जल = १ मूत्रिया

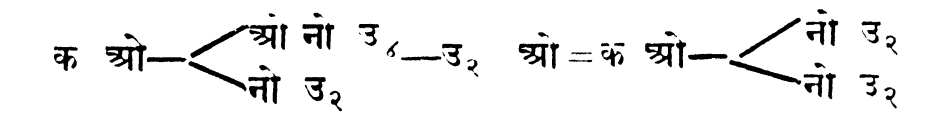

१—अमोनियम कर्बामेत—१ जल = १ मूत्रिया

साधारण अवस्था में भी मूत्र में अमोनिया एक अल्प मात्रा में प्रस्तुत रहता है। परन्तु यह मात्रा अमोनियम कर्बनेत या अमोनियम कर्बामेत देने से बढ़ती नहीं, इसका कारण यह है कि ये दोनों पदार्थ मूत्रिया बनकर शरीर से च्रित होते हैं, अमोनिया के रूप में नहीं। अमिनोविच्छेदन की क्रिया शरीर के सब अंगों में हो सकती है, परन्तु

वान स्लाइक ने यह बताया कि यह क्रिया अधिकांश यकृत में होती है और यकृत ही में अमोनिया मूत्रिया के रूप में परिणत होता है।

लांग (१९०४) और बोस्टौक (१९११) ने यह बताया कि शरीर से काटकर अलग निकाली हुई जीवित रगों में भी अमिनोविच्छेद की शक्ति होती है। यद्यपि ऐसी रगों की अमिनोअम्ल की अपेक्षा अमाइड पर प्रक्रिया अधिक सुगमता से होती है जो शरीर के अन्दर की घटना के विपरीत है। इसी प्रकार स्लाइक और मेअर (१९१२) के अन्वेषणों से भी यह बात ज्ञात होती है कि आंत्रिक अमिनोअम्ल तुरन्त ही यकृत में अमिनोविच्छेदित नहीं होते।

एक प्रयोग में यह देखा गया कि भोजन के पहले औवीं धमनी के १०० घन सेंटिमिटर में अमिनोअम्ल नोषजन की मात्रा ३·७ मिलीग्राम थी और यह संख्या भोजन देने के बाद बढ़कर ८·६ मिलीग्राम हो गई। उसी दशा में संयुक्ता शिरा के १०० घन सेंटिमिटर में अमिनोअम्ल नोषजन की मात्रा ९·५ मिलीग्राम मिली। अर्थात् ·९ मिलीग्राम अधिक। इसका अर्थ यह निकला कि यकृत पार करने में ·९ मिली-ग्राम का नाश हुआ। इससे यह सिद्ध हुआ कि अमिनो-विच्छेद में यकृत कोई विशेष भाग नहीं लेता।

अमिनो-विच्छेद-द्वारा निकला हुआ अमोनिया मूत्रिया में परिणत हो जाता है। फोलिन और डेनिस के कथनानुसार अमोनिया को मूत्रिया में परिणत करने की शक्ति सर्वसाधारण रगों में होती है। इसके प्रमाण में वे बताते हैं कि अंत्र में प्रत्यामिन और अमिनो-

अम्ल के इञ्जेक्ट करने पर यकृत शिरा में मूत्रिया की मात्रा और्वी धमनी की अपेक्षा अधिक नहीं होती। अर्थ यह कि रुधिरप्रवाह में यकृत मूत्रिया विशेष मात्रा में नहीं डालता है।

स्लाइक और मेअर (१९१३) का विचार इसके विपरीत यह है कि अधिकांश अमिनोअम्ल का अमिनो-विच्छेद यकृत में ही होता है। अमिनोअम्ल जो यकृत में पहुँचता है उसकी मात्रा और अंगों में प्रस्तुत अमिनोअम्ल की अपेक्षा बहुत जल्द कम होती है और साथ ही रक्त में मूत्रिया की मात्रा भी बढ़ती है।

श्यूडर के प्रयोगों से भी इसी धारणा का समर्थन होता है। श्यूडर के कथनानुसार शरीर से अलग किया हुआ यकृत भी अमोनियम कर्बनेत को मूत्रिया में परिणत कर देता है। इसी प्रकार चिड़ियों में संयुक्ता शिरा को काटकर बाँध देने पर मूत्र में मूत्रिकाम्ल की मात्रा पूरे नोषजन के ६० प्रतिसैकड़ा से ५ प्रतिसैकड़ा हो जाती है। (चिड़ियों में संयुक्ता शिरा काट देने पर भी रुधिर पेट की रुधिर-प्रणालियों में जमा होकर नहीं रह जाता; किन्तु वृक्क-सम्बन्धी शिरा-द्वारा रुधिर प्रवाह में पहुँच जाता है। दूसरी बात यह है कि चिड़ियों का मुख्य नोषजनात्मक क्षरण पदार्थ मूत्रिया नहीं होता; किन्तु अमोनियम मूत्रेत होता है। यह कुल नोषजन का ६० प्रतिसैकड़ा होता है।)

पावलौव और नेन्की ने कुत्ते की संयुक्ता शिरा को काटकर निम्नमहोशिरा में मिला दिया। घाव अच्छा हो जाने पर यदि अधिक

प्रत्यामिनात्मक भोजन दिया जाता तो कुत्ता बीमार पड़ जाता था। इसके मूत्र में अमोनियम कर्बामेत पहले से अधिक मिला। रुधिर में भी अमोनिया की वृद्धि हो जाती थी। इसका अर्थ यह है कि चूँकि अधिकांश रक्त यकृत में नहीं पहुँच पाता, शरीर में जमा अमोनिया मूत्रिया में परिणत नहीं हो पाता। साधारण अवस्था में भी यकृतशिरा में संयुक्ता शिरा की अपेक्षा अमोनिया की मात्रा कम होती है। इन सब बातों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि अमिनोविच्छेद तथा अमोनिया का मूत्रिया में परिवर्तन अधिकांश यकृत के अन्दर ही होता है।

अमिनोविच्छेद की क्रिया उदश्लेषण, ओषिदीकरण अथवा अवकरण-द्वारा हो सकती है। क्नूप के कथनानुसार तीनों ही क्रियायें हो सकती हैं। अमिनोविच्छेद से प्रत्यामिन अणु खंडित होकर अमोनिया और मज्जिकाम्ल बन जाता है। यह मज्जिकाम्ल ओषमज्जिकाम्ल, कीतो-मज्जिकाम्ल वा संयुक्त-मज्जिकाम्ल होता है। डेकिन और डडली ने (१९१३) यह दिखाया कि अ—अमिनोअम्ल का घोल स्वयं विश्लेषण के कारण अ—कितोनिक मद्यानार्द्र और अमोनिया में परिणत हो जाता है। इससे यह पता चलता है कि शरीर के भीतर यह क्रिया खमीरों की प्रस्तुति के कारण अधिक वेग से होती होगी। रेशमिन वाह्विविकामद्यानार्द्र और अमोनिया में परिवर्तित हो जाता है और फिर यह कितोनिक मद्यानार्द्र उदश्लेषण, ओषिदीकरण अथवा अवकरण-द्वारा मज्जिकाम्ल बन जाता है।

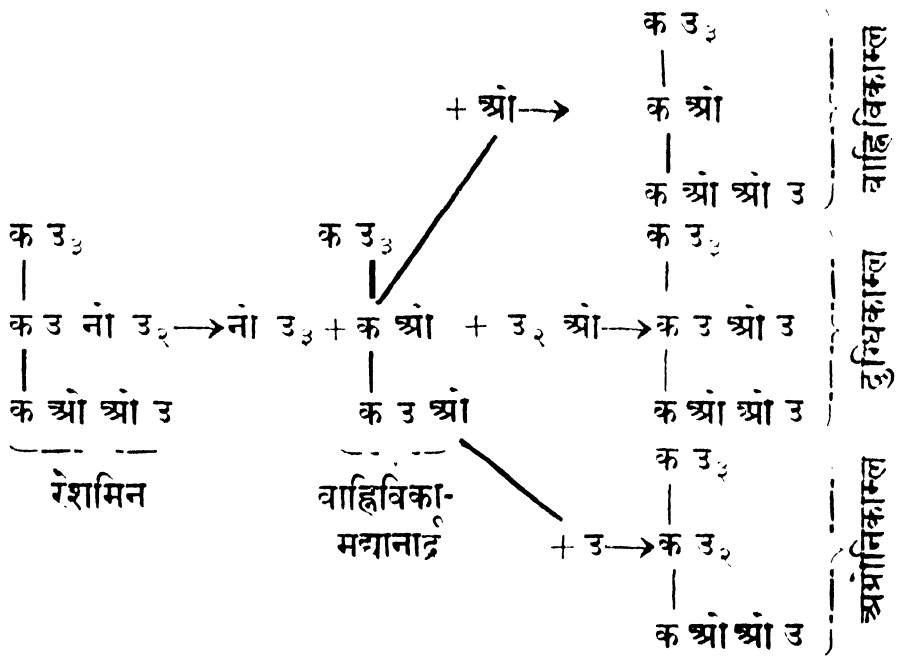

उदश्लेषण, ओषिदीकरण और अवकरण की क्रिया की पूर्ति के लिए शारीरिक कोष्ठों में तीन श्रेणी के खमीर होते हैं। परन्तु यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि यह अम्ल भी इसी दशा में शरीर में नहीं रह जाते; किन्तु इनका फिर ओषिदीकरण होता है और अन्त में ये कर्बन-द्वि-ओषिद् और जल बनकर शरीर से बाहर निकल जाते हैं। ऊपर लिख आये हैं कि ओषिदीकरण-द्वारा रेशमिन अन्त में वाह्निविकाम्ल में परिणत हो जाता है। यह फिर ओषिदीकरण-द्वारा सिरकाम्ल में परिणत होता है और अन्त में कर्बन-द्वि-ओषिद और जल बन जाता है। इसके विपरीत कीतेनिकाम्ल अवकरण-द्वारा ओषिकाम्ल और फिर मज्जिकाम्ल भी बन सकता है।

अमिनोविच्छेद के कारण अमिनोअम्ल अणु की शक्ति का नाश

५ प्रतिशतकड़ा या इससे भी कम होता है। रेशमिन का ताप-तुल्यार्थक प्रतिग्राम-अणु ३८९ कलारी होता है। अब अमिनोअम्ल के एक भाग का ऑपिदीकरण कभी नहीं होता। नोषजन शरीर के बाहर मूत्रिया होकर निकलता है। मूत्रिया का ताप-तुल्यार्थ ८० कलारी है। और चूँकि २ अमिनोअम्ल अणु में से १ मूत्रिया अम्ल निकलता है, इसलिए अमिनोअम्ल का वास्तविक ताप-तुल्यार्थ ३८९—$\frac{८०}{२}$ या ३४९ कलारी हुआ। अग्रोनिक अम्ल का ताप-तुल्यार्थ ३६७ कलारी और दुग्धिकाम्ल का ३२९ कलारी होता है। अर्थ यह कि अमिनोअम्ल के अमिनो-विच्छेद से अणु की शक्ति की कोई विशेष हानि नहीं हुई।

परन्तु यह देखा जाता है कि प्रत्यामिन अणु शरीर के कोष्ठों पर एक विशेष उत्तेजनात्मक प्रभाव डालते हैं और इस कारण शक्ति का उभार कर्बोदित या मज्जा खिलाने की अपेक्षा अधिक होता है। यह गुण अमिनोअम्ल में भी होता है, परन्तु सबमें नहीं। रेशमिन और मधुन कोष्ठों पर उत्तेजनात्मक प्रभाव डालते हैं, परन्तु गोंदिकाम्ल, ल्यूसीन और टाइरोसीन नहीं। इस कारण यदि प्रत्यामिन के आधार पर कार्य्य हो, तो कार्य्य करने के लिए आवश्यक शक्ति के उपरान्त कुछ शक्ति ताप के रूप में शरीर से निकलती है जो कर्बोदित या मज्जा के आधार पर कार्य्य होने में नहीं पाई जाती। अभिप्राय यह कि ऐसी दशा में जब प्राणी कार्य्य प्रत्यामिन के खर्च पर करता है तो शरीर अधिक शक्ति खोता है। यह बात प्राणी के लिए लाभदायक है कि नहीं इस पर एक मत नहीं है।

इस बात का निर्णय करने के लिए कि ताप की अधिकता अमिनो-

अम्ल के अणुओं के द्रुतगामी ओषिदीकरण के कारण या इन अणुओं के शारीरिक कोष्ठों पर उत्तेजनात्मक प्रभाव के कारण होती है, एक कुत्ते को ग्लोरहारजीन खिलाया गया। कुत्ते में मधुमेह के लक्षण बड़ी शीघ्रता से उत्पन्न हो गये। इस अवस्था में मधुन खिलाने पर अमिनोविच्छेद के पश्चात् यह ग्लाइकोज में परिणत होकर मूत्र-द्वारा शरीर के बाहर निकल आता था जिससे क उ ओ वाले भाग पर ओषिदीकरण की क्रिया नहीं हो पाती थी। इस पर भी मधुन इस कुत्ते में ताप का अधिक उभार करने में वही शक्ति रखती थी जो साधारण जानवर में। इस प्रयोग से यह सिद्ध हुआ कि यह घटना कोष्ठों की उत्तेजना से होती है।

परन्तु यह प्रभाव अमिनोअम्ल स्वयं नहीं डालते। बच्चे में या किसी रोग से पीड़ित मनुष्य जब स्वस्थ होने लगता है तो उसमें यह नहीं देखने में आता, जब अमिनोअम्ल शरीर के नये रग बनाते हैं। यह प्रभाव अमिनोअम्ल के अमिनोविच्छेद के समय दृष्टिगोचर होता है। यह अमिनोविच्छेद के बाद जो उदौषअम्ल बनते हैं उनके कारण होता है।

रेशमिन, मधुन, पौधिकाम्ल और गोंदामिक अम्ल के अमिनो-विच्छेदन बाद क उ ओ भाग ग्लाइकोज में परिणत हो सकता है। ल्यूसीन, दिव्योल-रेशमिन और टाइरोसीन से ग्लाइकोज नहीं बनता, यह यकृत के भीतर सिरकोसिरकिक अम्ल में बदल सकते हैं। पर अधिकांश प्रत्यामिन अणु का क उ ओ भाग ओषिदीकरण-द्वारा कर्बन-द्वि-ओषिद और जल में परिवर्त्तित हो जाता है।

अमिनोअम्ल शरीर के अन्दर एक दूसरे में परिवर्त्तित नहीं हो

सकते और चूँकि शरीर को कई एक तरह के अमिनोअम्ल की आवश्यकता होती है इस कारण कई एक भाँति के प्रत्यामिन खाने की भी आवश्यकता होती है जिसमें सब प्रकार के आवश्यक अमिनो-अम्ल शरीर में पहुँच सकें।

मज्जा

साधारण अवस्था में मज्जा शरीर में कई स्थानों पर जमी रहती है। सबसे अधिक मज्जा चर्म के नीचे मिलती है। उदरस्थ अंगों के चारों ओर भी इसकी बहुतायत रहती है। यकृत में भी मज्जा रहती है। मछलियों का यकृत मज्जा से भरा होता है। मधुजन और मज्जा साथ-साथ यकृत में नहीं जमा होते। उन मछलियों के यकृत में जो अधिकांश प्रत्यामिनक आहार पर रहती हैं और कर्बोदित कम या नहीं खाती हैं, मज्जा बहुत मिलती है; पर जो जानवर घास-पात खाकर जीते हैं उनके यकृत में मज्जा नहीं, किन्तु मधुजन पाया जाता है। अगर किसी प्राणी को भूखा रक्खा जाय ताकि उसकी मज्जा और मधुजन का भण्डार समाप्त हो जाय और उसको फिर मज्जात्मक आहार पर जीवित रक्खा जाय तो उसके यकृत में मज्जा बड़े वेग से जमा होने लगती है। परन्तु भरपूर कर्बोदित खिलाने पर यकृत में केवल मधुजन जमा होता है, यद्यपि चर्म के नीचे इस भोजन की अधिकता से भी मज्जा का बढ़ाव होता है। इसके अतिरिक्त मांस और हृदय में भी मज्जा होती है। साधारण दशा में यह मज्जा दिखाई नहीं पड़ सकती; क्योंकि यह पूर्णरूप से रगों में घुसी हुई होती है।

शरीर में जब खाद्य पदार्थ आवश्यकता से अधिक पहुँचता है तो यह मज्जा का रूप धारण करके जमा हो जाता है। मनुष्य और बहुत-से जानवरों के भी आहार में मज्जा होती है। यह मज्जा आवश्यकतानुसार ओषिदीकरण-द्वारा शक्ति उत्पन्न करती है। परन्तु जब यह आवश्यकता से अधिक होती है तो शरीर में जैसी की तैसी उसी अवस्था में जमा हो जाती है जैसा कि लेवेदेव के प्रयोग से स्पष्ट ज्ञात होता है। लेवेदेव* ने (१८८२) दो कुत्तों पर यह प्रयोग किया। दोनों कुत्ते कुछ समय तक भूखे रक्खे गये। उनमें से एक कुत्ते को इसके बाद ऐसा आहार दिया गया जिसमें अलसी का तेल अधिकता से था। दूसरे के खाने में बकरी के मांस की चर्बी अधिकता से थी। कुछ सप्ताह पीछे जब जानवर चर्बीदार हो चले तो ये दोनों वध किये गये और यह देखा गया कि जो कुत्ता बकरी के मांस की चर्बी खिलाकर रक्खा गया था उसके शरीर की चर्बी ५०° सें० पर भी ठोस अवस्था में थी, दूसरे कुत्ते के शरीर की चर्बी ०° सें० पर तरल मिली। इस प्रयोग से शरीर की चर्बी का भोजन की चर्बी से घनिष्ठ सम्बन्ध स्पष्ट मालूम होता है। इसी तरह मंक ने बतलाया है कि गोभी के तेल (कोलजा तेल) खिलाने से इस तेल में प्रस्तुत अम्ल, एकूसिक अम्ल, खानेवाले जानवर के बदन की मज्जा में मिलता है।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि अंत्र में मज्जा, मज्जिकाम्ल और मधुरिन में परिणत हो जाती है। आंत्रिक श्लैष्मिककला के कोष्ठों में

---

* Principles of Human Physiology by E. H. Starling.

ये फिर पुनःसंश्लेषण-द्वारा मज्जा का रूप धारण कर लेते हैं और मज्जा रुधिरप्रवाह में शरीर के सब अंगों में पहुँचती है।

मज्जा कम खानेवाला प्राणी भी मोटा हो जाता है, यह तो अक्सर देखा गया है। इसका कारण यह है कि आवश्यकता से अधिक होने पर कर्बोदित भी मज्जा का रूप पाते हैं। व्याइट के कथनानुसार जब अतिशय कर्बोदित खिलाने पर शरीर में मज्जा की वृद्धि होती है तो इस वृद्धि का अर्थ यह नहीं है कि सीधा कर्बोदित मज्जा में परिवर्त्तित हो रहा है। वास्तव में बात यह है कि साथ में खाया हुआ प्रत्यामिन मज्जा बन जाता है। कर्बोदित इस क्रिया में केवल यह भाग लेता है कि वह प्रत्यामिन के अणु को बिलकुल बदलकर पानी और कर्बन-द्वि-ओषिद नहीं होने देता है। व्याइट की यह धारणा ठीक नहीं निकली। लौएज़ और गिलबर्ट* (१८५२) ने सूअर के बच्चों पर प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिखाया कि कर्बोदित मज्जा में स्वयं परिणत होता है। इस प्रयोग में दो सूअर के बच्चे जिनकी तौल लगभग एक ही थी चुने गये। उनमें से एक वध किया गया और उसके शरीर के कुल मज्जा और नोषजन की मात्रा मालूम की गई। नोषजन से उसके शरीर में प्रस्तुत प्रत्यामिन की मात्रा मालूम की गई। अब दूसरा सूअर का बच्चा कई महीने जौ खिलाकर रक्खा गया और फिर वध किया गया। वध करने पर उसके शरीर की चर्बी और प्रत्यामिन तौले गये। यह मालूम हुआ कि जौ में जितनी चर्बी जानवर ने खाई थी और जितना प्रत्यामिन रगों के बनने से

* Principles of Human Physiology by E. H. Starling.

छुटा था चर्बी की मात्रा इससे कहीं अधिक थी। इससे यह सिद्ध हुआ कि यह चर्बी कर्बोदित से ही बनी थी। कर्बोदित से बनी हुई मज्जा में खजूरिकाम्ल और चर्बिकाम्ल की अधिकता होती है। कर्बोदित से मज्जा बनने में ओपजन की बहुत हानि होती है। द्राक्षोज के ३ अणुओं से चर्बिकाम्ल के एक अणु बनने में १६ परमाणु ओपजन की हानि होती है—

$$३\ क_६\ उ_{१२}\ ओ_६ = क_{१८}\ उ_{३६}\ ओ_२ + ८\ ओ_२$$

द्राक्षोज मज्जिकाम्ल ओपजन

मारमौट (गिलहरी जाति का एक जानवर) गर्मी के अन्त में खूब कर्बोदित खाता है और यह कर्बोदित ओपिदीकरण-द्वारा भस्म होकर कर्बन-द्वि-ओपिद और जल बनने की जगह मज्जा बनकर शरीर में जमा हो जाता है। यदि सब द्राक्षोज कर्बन-द्वि-ओपिद और जल में परिणत हो जाता तो ओपजन का व्यय और कर्बन-द्वि-ओपिद का क्षरण एक ही मात्रा में होता—

$$क_६\ उ_{१२}\ ओ_६ + ६\ ओ_२ = ६\ क\ ओ_२ + ६\ उ_२\ ओ$$

अर्थात् ६ ओपजन अणु का व्यय और ६ कर्बन-द्वि-ओपिद अणु का क्षरण—

$$\text{श्वासलब्धि} = \frac{६\ क\ ओ_२}{६\ ओ_२} = १$$

परन्तु जब जानवर के शरीर में द्राक्षोज मज्जा में परिणत हो रहा है तो बहुत मात्रा में ओपजन अलग निकलता है और इस कारण प्राणी को बाहरी ओपजन की कम मात्रा में आवश्यकता

पड़ती है। पेम्बरी (१९०३) के कथनानुसार ऐसी दशा में श्वास-लब्धि १०% तक हो सकती है।

ऊपर कहा जा चुका है कि मज्जा मधुरिन और मज्जिकाम्ल से मिलकर बनती है। मधुरिन द्राक्षोज से कैसे बनता है इसका भी कुछ बयान ऊपर कर आये हैं—

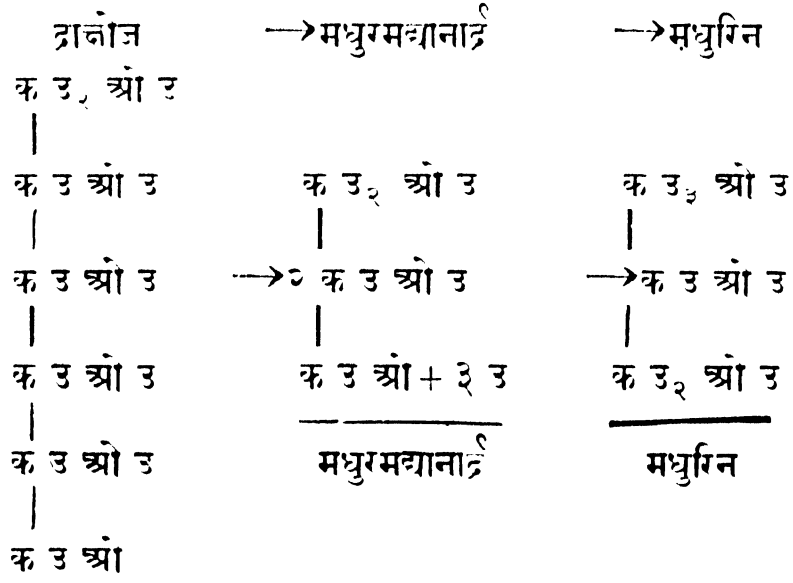

द्राक्षोज

स्मेडली और लुबज़िन्ज़क (१९१३) के कथनानुसार द्राक्षोज ओषिदीकरण-द्वारा वाह्निविकाम्ल बन जाता है। यह वाह्निविकाम्ल फिर खमीरों के प्रभाव से सिरकमद्यानार्द्र और कर्बन-द्वि-ओषिद बन जाता है। यह सिरक-मद्यानार्द्र फिर वाह्निविकाम्ल से जुटकर एक ऊँची श्रेणी का कीतोनिक अम्ल बनता है। यह कीतोनिक अम्ल फिर अपने मद्यानार्द्र और कर्बन-द्वि-ओषिद में

परिणत हो जाता है। वाह्निमद्यानार्द्र के साथ जुटने से अब फिर एक इससे भी अधिक ऊँची श्रेणी का कीतोनिक अम्ल बनता है। ऐसे कीतोनिक अम्ल के ओषिदीकरण से मज्जिकाम्ल और कर्बन-द्वि-ओषिद बनते हैं। इस निर्सवृत्त अम्ल से अवकरण द्वारा मज्जिकाम्ल बनता है। इस तरह सिरक—मद्यानार्द्र से नवनीतिक अम्ल बनता है। भोजन के प्रत्यामिन से मज्जा नहीं बनती है। यद्यपि अमिनो-विच्छेद-द्वारा रेशामिन शरीर के भीतर वाह्निविकाम्ल में परिणत हो सकता है और वाह्निविकाम्ल का संश्लेषण मज्जिकाम्ल में हो सकता है, परन्तु यह बात देखी जाती है कि प्रत्यामिन खाद्य चर्बी बनकर शरीर में नहीं जमा होता।

किसी-किसी बीमारी में शरीर के कुछ अंगों में मज्जा का बढ़ाव देखने में आता है। यकृत जब बढ़ जाता है तो इसके कोष्ठों में मज्जा के कण साफ़ दिखाई पड़ते हैं। परन्तु ऐसी अवस्था में भी शरीर में मज्जा का बढ़ाव वास्तव में नहीं होता है। इस दशा में मज्जा का भण्डार एक स्थान पर कम हो जाता है और दूसरी जगह पर बढ़ जाता है। फिर कोष्ठों की चर्बी चारों तरफ़ फैली हुई दशा में रहती है, वह एक में मिलकर बड़े-बड़े कणों के रूप में आ जाती है। प्रत्यामिन के अणुओं के टूटने पर जो मज्जिकाम्ल बनते हैं व नीचे श्रेणीवाले मज्जिकाम्ल होते हैं जिनसे चर्बी नहीं बनती। य मज्जि-काम्ल जैसे सिरकाम्ल और अग्रोनिकाम्ल ओषिदीकरण-द्वारा कर्बन-द्वि-ओषिद और पानी में परिणत हो जाते हैं।

अवश्य व्याइत की यह धारणा थी कि प्रत्यामिन से मज्जा बनती

है; परन्तु फल्युगर (१८९१) ने यथेष्ट रूप से इस धारणा को असत्य सिद्ध कर दिखाया।

कर्बोदित और प्रत्यामिन की भाँति मज्जा भी ओषिदीकरण-द्वारा शक्ति उत्पन्न कर सकती है। मांसतन्तु जब-जब सर्वथा कर्बोदित के भोजन के आधार पर कार्य्य करते हैं तो श्वासलब्धि०·९ होता है। विपरीत इसके जब मांसतन्तु का कार्य्य मज्जात्मक भोजन के आधार पर होता है, तो श्वासलब्धि का मूल्य इससे कम ०·७२ हो जाता है, अर्थात् ऐसी दशा में कर्बन-द्वि-ओषिद की मात्रा ओषजन की मात्रा से कम हो जाती है, क्योंकि कर्बन के उपरान्त उदजन का भी ओषिदीकरण होता है।

विटामिन

कर्बोदित, प्रत्यामिन और मज्जा के अतिरिक्त भी शरीर को कुछ विशेष खाद्यपदार्थों की आवश्यकता होती है। ये पदार्थ बहुत थोड़ी मात्रा में मिलते हैं और ये स्वयं शक्ति के उद्गम नहीं हो सकते। परन्तु इनकी अनुपस्थिति में न तो शरीर का बढ़ाव हो सकता है और न शरीर जीवित रह सकता है। इनका मुख्य कर्म उत्प्रेरण हो सकता है।

हौप्किन्स (१९१२) ने बतलाया कि यदि चूहों के बच्चे दधिनो-जिन, मज्जा, कर्बोदित और नमक खिलाकर रक्खे जायँ तो उनका बढ़ना बन्द हो जाता है। विपरीत इसके यदि इस आहार में थोड़ा-सा ताज़ा दूध मिला दिया जाय तो चूहे फिर बढ़ने लगते हैं। दूध केवल ३ घन सें० दिया जाता था जिसके कुल ठोस पदार्थ का बोझ ०·०८ ग्राम से

अधिक नहीं था; परन्तु चूहों के बच्चों का शारीरिक बढ़ाव लगभग ०·५ ग्राम प्रतिदिन था। दुग्ध की यह विशेषता उसके प्रत्यामिन और नमक निकाल देने पर भी शेष रहती है। वैज्ञानिक अब भी दूध में प्रस्तुत इस पदार्थ का ठीक-ठीक पता नहीं चला सके हैं। परन्तु इस प्रकार के कई एक पदार्थों का पता है जिनके अभाव से बड़े-बड़े दारुण रोग शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं। इनको विटामिन कहते हैं।

विटामिन 'अ'

यह विटामिन अण्डे के पीले अंश, मक्खन और कुछ हरी तरकारियों में मिलता है। इसे एम-कौलम ने पहले-पहल पाया था। यह पदार्थ हरे पौधों में पर्णहरिन-द्वारा बनता है और उसे जानवर उन पौधों से प्राप्त करते हैं। खाने पर यदि यह पदार्थ आवश्यकता से अधिक होता है तो जहाँ चर्बी जमा होती है वहाँ जानवर के शरीर में यह भी जमा हो जाता है। यह मज्जा में घुलनशील होता है। कौड मछली के यकृत में भी यह पदार्थ पाया जाता है। फंक (१९१४) ने यह विचार अपनी किताब में प्रकट किया कि शिशुरोग विशेष विटामिन की अनुपस्थिति से होता है। मेलानबी ने इस बात का समर्थन किया और बताया कि यह विटामिन, विटामिन 'अ' की तरह का है। शिपली (१९२२) गोल्डब्लाट्ट और जिल्वा (१९२३) इत्यादि ने इस बात को भली भाँति स्थापित किया कि ये दोनों विटामिन सामान्य परन्तु पृथक्-पृथक् हैं।

विटामिन 'ब'

यह विटामिन चावल और कई एक दूसरे दानों के छिलकों में होता है। इसके अभाव से 'बेरी बेरी' की बीमारी पैदा होती है। यह पदार्थ कई एक ऐसे पौधों में भी बनता है जिनमें पर्णहरिन नहीं होता। यह जल में घुलनशील होता है।

विटामिन 'स'

इसके अभाव से 'स्कर्वी' का रोग पैदा होता है। यह कुछ फलों और हरे पौधों में मिलता है। सूखे हुए बीजों में यह नहीं होता। परन्तु जिस समय बीज उगने लगते हैं तो यह उत्पन्न हो जाता है। फलों के उबालने या सुखाने से इसका नाश हो जाता है। दुग्ध और ताज़ा मांस में भी यह थोड़ा-बहुत पाया जाता है। यदि किसी जानवर या मनुष्य को बहुत दिनों तक ताज़े फलों से वञ्चित रक्खा जाय तो 'स्कर्वी' का रोग उसमें उत्पन्न हो जाता है जो फिर ताज़ा फलों और तरकारियों के खिलाने से दूर हो जाता है (होल्स्ट और फ्यूलिश, १९१२)।

विटामिन 'ड'

यह विटामिन बहुधा विटामिन 'अ' के साथ मिलता है। इसकी कमी से बालकों को शिशुरोगविशेष (रिकेट) हो जाता है। शिशुरोग-विशेष के रोगी की हड्डियाँ कोमल और विकृत हो जाती हैं। परन्तु यह रोग केवल हड्डियों से ही सम्बन्ध नहीं रखता है किन्तु सारे शरीर से। पुट्ठे ढीले और बलहीन हो जाते हैं। हड्डियों को कड़ा और प्रबल करने के लिए बालक के भोजन में चूने के नमक और

स्फुरेत का होना अति आवश्यक है। यदि यह पदार्थ खाद्य के अन्दर प्रस्तुत हो परन्तु विटामिन 'ड' उसमें न हो तो हड्डियाँ कोमल और विकृत रह जाती हैं। इससे यह पता चलता है कि हड्डियों और दाँतों में चूने के नमक और स्फुरेत के बैठाने का काम विटामिन 'ड' के द्वारा होता है। शिशुरोगविशेष और विटामिन 'ड' में क्या सम्बन्ध है, यह प्रोफ़ेसर मेलानबी के प्रयोगों से स्पष्ट ज्ञात होता है। ये प्रयोग कुत्तों पर किये गये थे। बहुत-से पिल्लों को निम्नलिखित खाना दिया जाता था :—

सफ़ेद रोटी, मलाई निकाला हुआ दुग्ध या कभी-कभी हलका मांस, विटामिन 'ब' यीस्ट के रूप में और विटामिन 'स' नारंगी के रस में।

यह खाना सब पिल्लों को दिया जाता था। परन्तु इसके अतिरिक्त भी कुछ और पदार्थ दिया जाता था। यह देखा गया कि इनमें से कुछ खाद्य पदार्थ तो ऐसे थे, जिनके देने से शिशुरोगविशेष नहीं होने पाता था, परन्तु दूसरे पदार्थों के देने से यह रोग नहीं रुकता था। ये नीचे लिखे जाते हैं—

खाद्य पदार्थ जिनके देने से शिशु-रोगविशेष रुक जाता था—	खाद्य पदार्थ जिनके देने से शिशु-रोगविशेष नहीं रुकता था—
कौड मछली के यकृत का तेल	अलसी का तेल
मक्खन	जैतून का तेल
मांस की चर्बी	कपास के बीज का तेल
अण्डे का पीला पदार्थ*	खजूर के गूदे का तेल
	सरसों का तेल

* Food, Health, Vitamins, by R. H. A. Plimmer and V. G Plimmer.

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि विटामिन 'अ' और विटामिन 'ड' साथ-साथ अकसर मिलते हैं—कौड के यकृत के तेल में दोनों मिलते हैं। मैक कौलम और उनके साथियों ने यह देखा कि कौड के यकृत का तेल ख़ूब गरम करने पर भी जिससे उसके विटामिन 'अ' का नाश हो जाता था शिशुरोग के रोगियों के लिए लाभदायक रहता था। इस धारणा का समर्थन इससे भी होता है कि एक शाक-विशेष (स्पीनाक) में विटामिन 'अ' पर्याप्त मात्रा में प्रस्तुत होता है, परन्तु यह शाक रिकेट को रोक नहीं सकता।

कोलेस्ट्रौल में बहुत छोटी मात्रा में एक और पदार्थ होता है जिसे एरगौस्ट्रौल कहते हैं—उद्दीपन से यह रेडीओस्ट्रौल या विटामिन 'ड' में परिणत हो जाता है।

विटामिन 'इ'

इवान्स और बिशप (१९२२) ने यह बताया कि सन्तानोत्पादन के लिए चूहों को एक विशेष खाद्य पदार्थ की आवश्यकता होती है। इसको विटामिन 'इ' कहा गया। इसकी अनुपस्थिति में चूहे सन्तानोत्पादन से वञ्चित रहते थे।

यह पदार्थ चर्बी, मक्खन, गरी का तेल, कपास का तेल, ज्वार, जई, गेहूँ, गरी, अखरोट, गोभी, मटर, नारंगी, दूध, यकृत, मांस, अण्डे की ज़र्दी इत्यादि बहुत-से साधारण भोजन की चीज़ों में रहता है, और जहाँ तक मनुष्य का सम्बन्ध है क़रीब-क़रीब सब ही मनुष्य इसको प्रतिदिन किसी न किसी रूप में खाते हैं। कम से कम

मनुष्य में बाँझपन का कारण विटामिन 'इ' का अभाव नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में मैककौलम और बेकर (१९३३) लिखते हैं—

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह विटामिन इतना आमतौर से साधारण खाद्य पदार्थों में खाया जाता है कि यह मानने का कोई कारण नहीं कि मानवीय बाँझपन साधारणतः इस विटामिन की कमी के कारण उत्पन्न होता है !"❀

विटामिन 'ब$_२$'

दुनिया के कुछ भागों में एक रोग पाया जाता है जिसे 'पेलाग्रा' कहते हैं। इसके रोगी इटली, फ़ान्स, स्पेन, रूमानिया, बल्कान, मिस्र और अमेरिका में पाये जाते हैं। इस रोग का सम्बन्ध त्वचा, अन्न-मार्ग और वातमण्डल से है। रोगी के हाथ और मुँह की त्वचा पर लाल-लाल दद्दोरियाँ निकलती हैं और बहुधा प्रचण्ड अतिसार का भी आक्रमण हो जाता है। वैज्ञानिकों की यह धारणा है कि पेलाग्रा का रोग जल में घुलनशील एक विटामिन के अभाव से होता है। इस विटामिन को अँगरेज़ी वैज्ञानिक विटामिन 'ब$_२$' और अमेरिकन वैज्ञानिक विटामिन 'ग' कहते हैं†। यह विटामिन दुग्ध, यीस्ट, मांस, गेहूँ का बीज-कारण, अंडा और शाक में पाया जाता है। गोल्डबर्ग, वारिंग और विटेल (१९१५) ने प्रयोग-द्वारा यह सिद्ध किया कि

❀ Food, Nutrition and Health, by E. V. McCollum and J. E. Becker.

† Vitamin B, or Vitamin G.

भोजन-द्वारा पेलाग्रा का रोग रोका जा सकता है।* यह प्रयोग पागल-खाने और यतीमखाने के रहनेवालों पर किया गया। इनके खाने में ताज़ा मांस, अंडा, दूध और ताज़ी तरकारी अधिक मात्रा में दी गई। ६७ रोगियों में से जिनके साधारण भोजन में ऊपर लिखी हुई चीज़ें बढ़ा दी गईं, एक भी भोजन बदलने के बाद फिर रोग-ग्रसित नहीं हुआ। ६९ मनुष्यों को जिनको यह रोग नहीं हुआ था, इस नये भोजन देने पर साल भर तक देखा गया। इनमें से एक भी इस रोग से पीड़ित नहीं हुआ। इसी तरह के कई एक प्रयोग और किये गये और उनसे यह बात सिद्ध है कि भोजन-दोष के कारण ही पेलाग्रा का रोग उत्पन्न होता है।

अब यहाँ पर कुछ साधारण खाद्य पदार्थों के विटामिन दिये जाते हैं। ० का अर्थ यह है कि इस पदार्थ की इस विटामिन के लिए रासायनिक जाँच की गई और यह नहीं मिला। + का अर्थ यह है कि इस पदार्थ में यह विटामिन है। + + का अर्थ यह है कि इस पदार्थ में यह विटामिन अच्छी मात्रा में मिलता है। + + + का अर्थ यह है कि इस पदार्थ में यह विटामिन बहुत ज़्यादा मात्रा में मिलता है। - - का अर्थ यह है कि इस पदार्थ की इस विटामिन के लिए परीक्षा नहीं की गई†।

---

* The Newer Knowledge of Nutrition, by E. V. McCollum and N. Lommond.

† Food, Nutrition and Health, by E. V. McCollum and J. E. Becker.

विटामिन

खाद्य पदार्थ	अ	ड	इ	ब	ग	स
अंकुरित जौ	+	...	...	...	...	+
जौ का पूरा दाना	+	...	...	+ +	...	०
जई, पूरा दाना ० से	+	०	+	..	...	०
जई अंकुरित	...	...	.	...	...	+
पौलिश्ड चावल	०	... ०	से +	०	०	०
चावल के दाने का ऊपरी छिलका	+	...	...	+ + +	...	...
राई पूरा दाना	+	...	...	+ +	...	०
गेहूँ पूरा दाना	+	...	.	+ +	. +	०
सूखा मटर	+	...	...	+ +	+ +	+
हरा मटर	+ +	...	...	...	...	+ +
मसूर	+	...	...	+ -	+	...
अंकुरित मसूर	...	...	...	...	...	+ +
हरा ताज़ा करमकल्ला	+ +	...	.	+ +	+ + + +	+
पकाया हुआ करमकल्ला	+	...	...	...	...	+
बिला पकाई पुरानी गाजर	+ +	...		+ +	+	+
पकाई हुई पुरानी गाजर	...	...	...	.	...	+
ताज़ी गाजर	+	...	...	+ +	+	+ +

	अ	ड	इ	ब	ग	स
गोभी ताज़ी	+	...	..	...	...	+ + +
पकाई गोभी	...	...	...	...	..	+ +
प्याज़	०से +	...	...	+	+	+से++
आलू कच्चा	+	...	...	+ +	+	++से+++
पकाया हुआ आलू	+	...	...	...	...	+से++
मूली	०से +	..	...	...	...	+ +
सेब	+	...	...	+	+	+से++
केला	+ से +	+ कम	+	+	+	+ +
खजूर	+	...	...	+	...	...
अंजीर	+	...	...	...	...	...
अंगूर	+	...	...	...	...	+ + +
नीबू	+	...	...	...	...	+ + +
पका आम	+ +	...	...		...	++से+++
कच्चा आम	+	...	...	...	...	...
नारंगी का रस	+	...	...	..	..	+ + +
शक़तालू	+	...		...	...	+से++
नाशपाती	...		...	..	...	+
अनन्नास	+ +	...	...	...	...	+ +
बैर	...	...	...	...	...	+से++
ताज़ा पका टोमाटो	+ +	...	..	+	+	+ + +

	अ	ड	इ	ब	ग	स
सूखा टोमाटो	...	...	...	...	..	+ +
मुर्ग़ का यकृत	+	+	...	...	..	...
मछली, चर्बी और मांस	+	+	+	.	...	...
मछली का यकृत	+ + +	+ + +	...	...		.
ख़स्सी का मांस	...	...	...	+ +	+ +	०से +
ख़रगोश का यकृत	.	...	...	...	...	+ +
सामन मछली	+	...	...	...		...
भेड़ का मस्तिष्क	...	..	...	+ +	.	...
भेड़ का यकृत	+ + +	०	...	...	...	.
ताज़ा अंडा बत्तख़ का	+ +	...	...	...	...	
ताज़ा अंडा मुर्ग़ी का	+ +	+ +	...	+	+ से +	+ ...
मुर्ग़ी के अंडे की ज़र्दी	+ +	+ + +	+ + +	+ +	+	०
मुर्ग़ी के अंडे की सफ़ेदी	०	०	. .	..	+ +	०
गाय का ताज़ा दूध	+	०से +	+	+	+ +	+
गाय का पास्टूराइज़ड् दूध	+	...	...	...	.	+
गाय का दूध गाढ़ा किया हुआ	+ +	...	...	+	..	+
बकरी का दूध	+	.	...	...	...	+

	अ	ट	इ	व	ग	स
स्त्री का दूध	+	०से +	...	+	+	०से +
शहद	...	...	...		...	बहुत कम
ईख	०	...	..	...	..	०
ह्वेल का तेल	+ से +	+	...	.	...	...
गेहूँ का तेल	...	...	+ + +			...
अंकुरित गेहूँ का तेल		...	+ + + बहुत		...	
जैतून का तेल	०से +	०से +	+	...	...	०
खस्सी के मांस की चर्बी	+	...	+	+	...	०
घी	०से +	...	...		...	...
सामन के यकृत का तेल	+ +	+ +	...	.	..	...
कौड के यकृत का तेल	+ +	+ + +	०से +		.	...
मक्खन चगाई पर का	+ +	+ +	+ +	...	...	०
मक्खन सूखी खिलाई का	+	+	+	...	..	०

पोषण में कुछ खनिज पदार्थों का महत्त्व

हड्डियों और दाँतों के बनने में खटिकम् और स्फुर का कितना महत्त्व है इसके कहने की आवश्यकता नहीं। बालक को खटिकम्

और स्फुर पूरी मात्रा में मिलना चाहिए। और इसलिए गर्भिणी स्त्री को भी भोजन में निरन्तर ये दोनों तत्त्व पूरी मात्रा में मिलने चाहिए। क्योंकि पेट के भीतर का बालक बराबर माता के शरीर का खटिकम् और स्फुर अपने शरीर में खींचता जा रहा है। जन्म लेने के बाद बालक इन दोनों तत्त्वों को माता के दूध में पाता है और पहले से अधिक मात्रा में। साधारण प्रौढ़ मनुष्यों के रुधिर में खटिकम् एक छोटी मात्रा में मिलता है। इसकी कमी से रुधिर के जमने की शक्ति बहुत कम हो जाती है और हृदय की धड़कन असाधारण गति से होने लगती है—इसलिए बच्चों और गर्भिणी स्त्रियों के अतिरिक्त सर्वसाधारण को इनकी आवश्यकता रहती है, और भोजन में इनकी कमी पड़ने से शरीर पीड़ित होता है।

नीचे कुछ साधारण खाद्य पदार्थों में खटिकम और स्फुर की मात्रा दी जाती है—

सूखा पदार्थ १०० भाग

खाद्य पदार्थ	राख	स्फुर	खटिकम्
गेहूँ	१·८६	·४२५	·०५६
गेहूँ का आटा	१९	·१०२	·०२८
चावल	·३१	·१०४	·००९
मटर	४·३०	·५३२	·११७
दूध (फेन)	७ १७	·९७८	१·३३६
अंडा	३·४६	·८५६	२·५०

खाद्य पदार्थ	राख	स्फुर	खटिकम्
सेब	१·८१	०६४	·०२७
केला	२·९२	·११९	·०३७
करमकल्ला	७·१९	·२६२	·५९०
आलू	२·१४	·२७०	०२७
अलफालकी घास	६·९	·२३८	१·१६०
* बाजरे की घास	५·९	·१७३	·३२६

दूध और शाक में खटिकम् और स्फुर की मात्रा अधिक होती है। मटर और दूसरे छीमीदार दानों में इनसे कुछ कम खटिकम् और स्फुर होते हैं।

खटिकम् और स्फुर के अतिरिक्त कुछ और खनिज पदार्थों की भी आवश्यकता शरीर को होती है और ये हैं, लोहम्, मगनीसम्, मैंगनीज़, नैलिन् और ताम्रम्।

शरमन के कथनानुसार प्रौढ़ मनुष्य को १५ मिलीग्राम लोहम् की आवश्यकता होती है। लोहम् हीमोग्लोबिन का एक सारभूत भाग है। लोहे के अभाव से रक्तहीनता का रोग उत्पन्न हो जाता है।

ताम्रम् लोहम् के समीकरण में सहायक होता है। ताम्रम् यकृत में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। शरीर का लगभग सब नैलिन् चुल्लिका ग्रन्थि में जमा रहता है। यदि भोजन से नैलिन् एक-मात्र अनुपस्थित हो तो गलगण्ड का रोग हो जाता है। ओरेण्ट और

* Food, Nutrition and Health, by E. V. McCollum and G. E. Becker.

मैककौलम के कथनानुसार खाने में मैंगनीज़ की अनुपस्थिति से गर्भिणी चुहियों में मातृवत् ममता नहीं उत्पन्न होती। मर्दाने चूहे मैंगनीज़-विहीन खाना खिलाये जाने पर बाँझ हो गये। ऐसे जानवरों की शुक्र-ग्रन्थि हीन दशा को प्राप्त होती है। ये सब ख़राबियाँ मैंगनीज़ देने पर फिर ठीक हो जाती हैं। मैगनीसम् के अभाव से जानवर सहज विकारशील हो जाते हैं और ज़रा-सा छेड़ने से मैगनीसम्-टिटानी से मर जाते हैं। मैककौलम और वेकर के कथनानुसार मनुष्य कभी मैगनीसम् की कमी से शायद कभी पीड़ित नहीं होते। हालैंड की गायों को एक विशेष रोग होता है जिसे घास टिटानी कहते हैं। यह मैगनीसम् के अभाव से उत्पन्न होता है।

इसलिए भोजन में कर्बोदित, प्रत्यामिन, मज्जा, विटामिन के अतिरिक्त कुछ खनिज पदार्थों का होना भी अति आवश्यक है।

Printed by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.